

## Chapter दस

### द्वारका के लिए भगवान् कृष्ण का प्रस्थान

शौनक उवाच

हत्वा स्वरिक्थस्पृध आततायिनो युधिष्ठिरो धर्मभृतां वरिष्ठः ।

सहानुजैः प्रत्यवरुद्धभोजनः कथं प्रवृत्तः किमकारषीत्ततः ॥ १ ॥

**शब्दार्थ**

शौनकः उवाच—शौनक ने पूछा; हत्वा—वध करने के बाद; स्वरिक्थ—वैध पैतृक सम्पत्ति; स्पृधः—छीनने की इच्छा से; आततायिनः—आततायी; युधिष्ठिरः—राजा युधिष्ठिर; धर्म-भृताम्—धर्म का पालन करने वालों का; वरिष्ठः—सबसे बड़ा; सह-अनुजैः—अपने छोटे भाइयों सहित; प्रत्यवरुद्ध—रोक दिया; भोजनः—आवश्यकताओं को स्वीकार करना; कथम्—कैसे; प्रवृत्तः—लगा हुआ; किम्—क्या; अकारषीत्—सम्पन्न किया; ततः—तत्पश्चात्।

शौनक मुनि ने पूछा : जो महाराज युधिष्ठिर की वैध पैतृक सम्पत्ति को छीनना चाहते थे, उन शत्रुओं का वध करने के बाद महानतम धर्मात्मा युधिष्ठिर ने अपने भाइयों की सहायता से अपनी प्रजा पर किस प्रकार शासन चलाया? निश्चित ही वे अपने साम्राज्य का उपभोग मुक्त होकर अनियन्त्रित चेतना से नहीं कर सके।

तात्पर्य : महाराज युधिष्ठिर समस्त धर्मात्माओं में श्रेष्ठ थे। अतएव वे साम्राज्य का भोग करने के लिए अपने चचेरे भाइयों से लड़ने के लिए तैयार नहीं हो रहे थे—वे सही प्रयोजन के लिए लड़े, क्योंकि हस्तिनापुर का राज्य उनकी वैध पैतृक सम्पत्ति था और उनके चचेरे भाई उसको हड़पना चाह रहे थे। अतएव वे भगवान् श्रीकृष्ण के मार्गदर्शन में सही प्रयोजन के लिए लड़े, किन्तु वे अपनी विजय के फलों का भोग न कर पाये, क्योंकि उनके सारे चचेरे भाई युद्ध में मारे गये थे। अतएव उन्होंने साम्राज्य पर शासन तो चलाया, किन्तु इसे कर्तव्य समझ कर और अपने छोटे भाइयों की सहायता से चलाया। शौनक ऋषि की जिज्ञासा महत्त्वपूर्ण थी; वे यह जानना चाह रहे थे कि जब महाराज युधिष्ठिर को साम्राज्य भोगने का अवसर मिला, तब उनका आचरण कैसा था?

सूत उवाच

वंशं कुरोर्वंशदवाग्निनिर्हतं संरोहयित्वा भवभावनो हरिः ।

निवेशयित्वा निजराज्य ईश्वरो युधिष्ठिरं प्रीतमना बभूव ह ॥ २ ॥

**शब्दार्थ**

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने उत्तर दिया; वंशम्—वंश; कुरोः—राजा कुरु का; वंश-दव-अग्नि—बाँसों से लगनेवाली जंगल की आग; निर्हतम्—निःशेष, दग्ध; संरोहयित्वा—वंश की पौध; भव-भावनः—सृष्टि के पालक; हरिः—भगवान् श्रीकृष्ण; निवेशयित्वा—पुनः स्थापित करके; निज-राज्ये—अपने ( उनके ) राज्य में; ईश्वरः—परमेश्वर; युधिष्ठिरम्—महाराज युधिष्ठिर को; प्रीत-मनाः—अपने मन में प्रसन्न; बभूव ह—हुए।

सूत गोस्वामी ने कहा : विश्व के पालनकर्ता भगवान् श्रीकृष्ण महाराज युधिष्ठिर को उनके साम्राज्य में पुनः प्रस्थापित करके एवं क्रोध की दावाग्नि से विनष्ट हुए कुरुवंश को पुनरुज्जीवित करके अत्यन्त प्रसन्न हुए।

**तात्पर्य** : इस संसार की तुलना उस दावाग्नि के साथ की जाती है, जो बाँस की झाड़ियों में घर्षण से उत्पन्न होती है। ऐसी दावाग्नि स्वतः लगती है, क्योंकि बाँसों में घर्षण बाह्य कारण के बिना होता है। इसी प्रकार इस संसार में जो लोग प्रकृति पर प्रभुत्व जताना चाहते हैं, उनके क्रोध से युद्ध की अग्नि भड़कती है, जिससे अवाञ्छित प्रजा समाप्त हो जाती है। ऐसी अग्नियाँ या युद्ध भड़कते रहते हैं और भगवान् को उनसे कुछ लेना-देना नहीं होता। लेकिन चूँकि वे सृष्टि का पालन करना चाहते हैं, अतएव वे चाहते हैं कि जन-समूह आत्म-साक्षात्कार के सत्यपथ पर चले, जिससे जीव भगवद्धाम में प्रवेश कर सकें। प्रभु चाहते हैं कि कष्ट भोगनेवाले मनुष्य भगवद्धाम उनके पास वापस आ जाँय और तीनों भौतिक तापों से मुक्त हो जाँय। सृष्टि की सारी योजना यही प्रयोजन के लिए बनाई गई है, लेकिन जो चेतता नहीं, वह भगवान् की मायाशक्ति द्वारा दिये गये कष्टों को इस संसार में भोगता है। अतएव भगवान् चाहते हैं कि उनके प्रामाणिक प्रतिनिधि ही संसार पर शासन चलाए। भगवान् श्रीकृष्ण का अवतार ऐसे राज्य की स्थापना करने तथा ऐसे अवाञ्छित व्यक्तियों का वध करने के लिए हुआ, जिनको उनकी योजना से कुछ सरोकार नहीं रहता। कुरुक्षेत्र का युद्ध भगवान् की योजना के अनुसार लड़ा गया था, जिससे अवाञ्छित लोगों का सफाया हो जाय और उनके भक्त के अधीन शान्तिपूर्ण साम्राज्य की स्थापना हो। अतएव

जब राजा युधिष्ठिर सिंहासन पर बैठे तथा कुरुवंश की पौध (अंकुर) महाराज परीक्षित के रूप में बच गई, तो भगवान् परम प्रसन्न हुए।

निशाम्य भीष्मोक्तमथाच्युतोक्तं  
 प्रवृत्तविज्ञानविधूतविभ्रमः ।  
 शशास गामिन्द्र इवाजिताश्रयः  
 परिध्युपान्तामनुजानुवर्तितः ॥ ३ ॥

### शब्दार्थ

निशाम्य—सुनकर; भीष्म-उक्तम्—भीष्म द्वारा कहा हुआ; अथ—तथा; अच्युत-उक्तम्—अच्युत भगवान् कृष्ण ने जो कुछ कहा था; प्रवृत्त—लगे रह कर; विज्ञान—पूर्ण ज्ञान; विधूत—पूर्ण रूप से धुल गये; विभ्रमः—सारे सन्देह; शशास—शासन किया; गाम्—पृथ्वी पर; इन्द्र—स्वर्ग का राजा; इव—सदृश; अजित-आश्रयः—दुर्जय भगवान् द्वारा रक्षित; परिधि-उपान्ताम्—समुद्रों सहित; अनुज—छोटे भाई; अनुवर्तितः—उनके द्वारा पालन किया जाकर।

भीष्मदेव तथा अच्युत भगवान् श्रीकृष्ण ने जो कुछ कहा था, उससे प्रबुद्ध होकर महाराज युधिष्ठिर परिपूर्ण ज्ञान विषयक मामलों में व्यस्त हो गये, क्योंकि उनके सारे सन्देह दूर हो चुके थे। इस प्रकार उन्होंने पृथ्वी तथा सागरों पर राज्य किया और उनके छोटे भाई उनका साथ देते रहे।

**तात्पर्य :** जब महाराज युधिष्ठिर समुद्र-पर्यन्त पृथ्वी पर शासनारूढ़ थे, तो उस समय भी आधुनिक अंग्रेजियत के ज्येष्ठाधिकार या सबसे बड़े को उत्तराधिकार जैसा नियम प्रचलित था। उस काल में हस्तिनापुर (अब दिल्ली का एक अंश) का राजा, समुद्रों समेत, विश्व का (चक्रवर्ती) सम्राट होता था और यह क्रम महाराज युधिष्ठिर के पौत्र महाराज परीक्षित तक चलता रहा। महाराज युधिष्ठिर के छोटे भाई उनके मन्त्री तथा राज्य के सेनानायकों के रूप में कार्य करते थे और राजा के धर्मात्मा भाइयों का आपस में पूर्ण सहयोग था। महाराज युधिष्ठिर पृथ्वी के साम्राज्य पर शासन करने के लिए आदर्श राजा या भगवान् श्रीकृष्ण के आदर्श प्रतिनिधि थे और उनकी तुलना स्वर्ग के प्रतिनिधि शासक राजा इन्द्र से की जा सकती थी। जिस प्रकार इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, वरुण तथा वायु जैसे देवता ब्रह्माण्ड के विभिन्न ग्रहों के प्रतिनिधि राजा हैं, उसी प्रकार महाराज युधिष्ठिर भी पृथ्वी के साम्राज्य पर शासन चलानेवाले प्रतिनिधि राजा थे। वे आधुनिक

प्रजातन्त्र के अल्प तरह के अप्रबुद्ध राजनीतिक नेता जैसे न थे। उन्हें भीष्मदेव ने तथा अच्युत भगवान् ने भी उपदेश दिया था। अतएव उन्हें हर वस्तु का पूरा ज्ञान था।

आजकल, राज्य का निर्वाचित कार्यकारी प्रमुख कठपुतली के समान होता है, क्योंकि उसके पास राज-शक्ति नहीं होती। यदि वह महाराज युधिष्ठिर की तरह प्रबुद्ध भी होता, तो भी वह अपनी संवैधानिक स्थिति के कारण अपनी इच्छा से कुछ नहीं कर सकता। इसीलिए वैचारिक विषमताओं या खुद के स्वार्थों के कारण पृथ्वी के अनेक राज्य परस्पर लड़-झगड़ रहे हैं। लेकिन महाराज युधिष्ठिर जैसे राजा के पास अपनी खुद की विचार-धारा नहीं थी। उन्हें भी अच्युत भगवान् तथा भगवान् के प्रतिनिधि एवं प्रामाणिक दूत भीष्मदेव के उपदेशों का अनुगमन करना होता था। शास्त्रों का उपदेश है कि मनुष्य को चाहिए कि, किसी व्यक्तिगत स्वार्थ तथा स्व-निर्मित विचारधारा के बिना, परम प्रमाण तथा अच्युत भगवान् का अनुगमन करे। इसीलिए महाराज युधिष्ठिर महासागरों सहित सारे संसार पर शासन कर सके, क्योंकि जो नियम थे वे अमोघ थे और वैश्विक रूप से सबों पर समान रूप से लागू होते थे। एक ही विश्व-राज्य की कल्पना तभी पूरी हो सकती है, जब हम अच्युत अधिकारी का अनुगमन करें। एक अपूर्ण मानव ऐसी विचारधारा का सृजन नहीं कर सकता, जो सबके लिए स्वीकार्य हो। केवल पूर्ण तथा अच्युत पुरुष ही ऐसा कार्यक्रम बना सकता है, जो प्रत्येक स्थान पर लागू होता हो और जिसका पालन संसार के सारे लोगों द्वारा हो सके। शासन चलानेवाला तो व्यक्ति होता है, निराकार सरकार नहीं। यदि व्यक्ति पूर्ण है, तो सरकार भी पूर्ण है। यदि व्यक्ति मूर्ख है, तो सरकार भी मूर्खों का घर है। यही प्रकृति का नियम है। अयोग्य राजाओं तथा प्रशासकों के सम्बन्ध में अनेक कथाएँ हैं। अतएव कार्यकारी प्रमुख को महाराज युधिष्ठिर जैसा प्रशिक्षित व्यक्ति होना चाहिए और विश्व पर शासन चलाने के लिए उसके पास पूरी राजसत्ता होनी चाहिए। विश्व राज्य की कल्पना महाराज युधिष्ठिर जैसे पूर्ण राजा के राज्यकाल में ही साकार हो सकती है। उन दिनों संसार सुखी था, क्योंकि विश्व में महाराज युधिष्ठिर जैसे राजा शासन चलाते थे।

कामं ववर्ष पर्जन्यः सर्वकामदुघा मही ।

सिषिचुः स्म ब्रजान् गावः पयसोधस्वतीर्मुदा ॥ ४ ॥

### शब्दार्थ

कामम्—सारी आवश्यक वस्तु; ववर्ष—उपलब्ध हुई; पर्जन्यः—वर्षा; सर्व—प्रत्येक वस्तु; काम—आवश्यकताएँ; दुघा—उत्पन्न करनेवाली; मही—पृथ्वी; सिषिचुः स्म—सिक्त करती थीं; ब्रजान्—चरागाहों को; गावः—गाएँ; पयसा उधस्वतीः—भरे हुए थनों के कारण; मुदा—प्रसन्नता के कारण।

महाराज युधिष्ठिर के राज्य में मनुष्यों को जितना भी पानी चाहिए था, बादल उतना पानी बरसाते थे और पृथ्वी मनुष्यों की सारी आवश्यकताओं की पूर्ति पर्याप्त मात्रा में करती थी। दूध से भरे थनों वाली तथा प्रसन्न-चित्त गौवें अपने दूध से चरागाही को सिक्त करती रहती थीं।

**तात्पर्य :** आर्थिक विकास का मूल सिद्धान्त भूमि तथा गायों पर केन्द्रित है। अन्न, फल, दूध, खनिज, वस्त्र, ईंधन इत्यादि मानव-समाज की आवश्यकताएँ हैं। शरीर की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मनुष्य को इन्हीं वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है। निश्चित ही मनुष्य को मांस और मछली या लोहे के औजार तथा यंत्र नहीं चाहिए। महाराज युधिष्ठिर के शासनकाल में सारे संसार में नियमित वर्षा होती थी। वर्षा मनुष्य के नियंत्रण में नहीं होती। स्वर्ग का राजा इन्द्रदेव वर्षा का अधिष्ठाता है और वह भगवान् का सेवक है। जब राजा तथा राजा के अधीन लोग भगवान् की आज्ञा का पालन करते हैं, तो आकाश से नियमित वर्षा होती है और यही वर्षा पृथ्वी पर विविध प्रकार की उपजों की निमित्त स्वरूप है। नियमित वर्षा से न केवल प्रचुर धान्य तथा फल उत्पन्न होते हैं, अपितु जब नक्षत्रों के साथ वर्षा का संयोग बैठता है, तो बहुमूल्य रत्न तथा मोती बहुतायत से उत्पन्न होते हैं। अनाज तथा शाकों से मनुष्यों तथा पशुओं का भरण-पोषण होता है और मोटी ताजी गाएँ भरपूर दूध देती हैं, जिससे मनुष्य को बल तथा जीवनी शक्ति मिलती है। यदि प्रचुर मात्रा में दुग्ध, अन्न, फल, कपास, रेशम तथा रत्न हों तो फिर लोगों को सिनेमा, वेश्यालयों, कसाईघरों इत्यादि की आवश्यकता क्यों पड़ती है? सिनेमा, कार, रेडियो, मांस तथा होटलों के कृत्रिम विलासमय जीवन की क्या आवश्यकता है? क्या इस सभ्यता ने एक दूसरे से व्यक्तिगत एवं राष्ट्रीय स्तर पर लड़ते रहने के अतिरिक्त और कुछ भी दिया है?

क्या इस सभ्यता ने एक व्यक्ति की सनक पर हजारों व्यक्तियों को नारकीय फैक्टरियों में तथा युद्धस्थलों में भेजकर समानता तथा विश्व बन्धुत्व को बढ़ावा दिया है ?

यहाँ पर कहा गया है कि गौवें अपने दुग्ध से चरागाहों को सिक्त करती थीं, क्योंकि उनके थन दूध से भरे रहते थे, और वे अत्यन्त प्रमुदित रहती थीं। तो फिर क्या उन्हें, खेतों में पर्याप्त मात्रा में घास खिलाकर, प्रसन्न जीवन बिताने के लिए समुचित संरक्षण की आवश्यकता नहीं है ? तो लोगों को अपने स्वार्थ के लिए उनका वध क्यों करना चाहिए ? मनुष्य अन्न, फल, दूध से क्यों नहीं सन्तुष्ट हो लेता, जिनसे हजारों प्रकार के व्यंजन तैयार हो सकते हैं ? इन निर्दोष पशुओं का वध करने के लिए सारे विश्व में कसाईघर क्यों हैं ? महाराज युधिष्ठिर के पौत्र, महाराज परीक्षित ने अपने विशाल राज्य का दौरा करते हुए देखा कि एक काला व्यक्ति गाय का वध करने का प्रयास कर रहा है। राजा ने तुरन्त उस कसाई को गिरफ्तार करके उसे पर्याप्त मात्रा में दण्डित किया। क्या राजा या शासनाध्यक्ष को इन बेचारे पशुओं की रक्षा नहीं करनी चाहिए, जो अपनी रक्षा स्वयं करने में अक्षम हैं ? क्या यह मानवता है ? क्या देश के पशु देशवासी नहीं हैं ? तो फिर संगठित कसाईघरों में वे उनके वध किये जाने की अनुमति क्यों देते हैं ? क्या ये समानता, बन्धुत्व तथा अहिंसा के लक्षण हैं ?

अतएव आधुनिक, प्रगतिशील सभ्य स्वरूप की सरकार के विपरीत, महाराज युधिष्ठिर का जैसा राजतन्त्र तथाकथित प्रजातंत्र से कहीं अधिक श्रेष्ठ है, जिसमें पशुओं का वध किया जाता है और पशु से भी गिरे हुए मनुष्य से, पशु से भी निम्न कोटि के दूसरे मनुष्य के लिए, मतदान कराया जाता है।

हम सभी भौतिक प्रकृति के प्राणी हैं। *भगवद्गीता* में कहा गया है कि भगवान् स्वयं बीजदाता पिता हैं और प्रकृति सभी आकार-प्रकार के जीवों की माता है। इस तरह माता प्रकृति के पास, परम पिता श्रीकृष्ण की कृपा से, पशुओं तथा मनुष्यों दोनों के लिए पर्याप्त भोजन है। मनुष्य अन्य समस्त जीवों का बड़े भाई जैसा है। उसमें पशुओं की अपेक्षा अधिक बुद्धि है, जिससे वह प्रकृति का मार्ग तथा परम पिता के संकेतों को समझ सके। इस संसार में कृत्रिम

विलास तथा इन्द्रिय-तृप्ति के लिए, कृत्रिम लोभ तथा डाँवाडोल शक्ति द्वारा, कृत्रिम ढंग से आर्थिक विकास करने का प्रयास नहीं करना चाहिए, अपितु मानवीय सभ्यता को प्राकृतिक उत्पादन पर आश्रित रहने देना चाहिए। यह तो कूकरो-सूकरो का जीवन है।

नद्यः समुद्रा गिरयः सवनस्पतिवीरुधः ।  
फलन्त्योषधयः सर्वाः काममन्वृतु तस्य वै ॥ ५ ॥

### शब्दार्थ

नद्यः—नदियाँ; समुद्राः—समुद्र; गिरयः—पहाड़; सवनस्पति—वनस्पतियाँ; वीरुधः—लताएँ; फलन्ति—सक्रिय, कारगर; ओषधयः—दवाएँ; सर्वाः—समस्त; कामम्—आवश्यकताएँ; अन्वृतु—मौसमी; तस्य—राजा के लिए; वै—निश्चय ही।

प्रत्येक ऋतु में नदियाँ, समुद्र, पर्वत, जंगल, लताएँ तथा कारगर औषधियाँ प्रचुर मात्रा में राजा को अपना-अपना कर चुकता करती थीं।

तात्पर्य : चूँकि महाराज युधिष्ठिर अजित के संरक्षण में थे, जैसाकि पहले उल्लेख हो चुका है, अतएव भगवान् की सम्पत्ति अर्थात् नदियाँ, समुद्र, पर्वत, जंगल आदि प्रसन्न थे और वे राजा को अपना-अपना कर चुकाते रहते थे। सफलता का रहस्य है भगवान् के संरक्षण में शरण लेना। उनकी अनुमति के बिना कुछ सम्भव नहीं है। औजारों तथा यंत्रों के बल पर अपने आप से आर्थिक विकास करने के लिए प्रयास करना ही तो सब कुछ नहीं है। उसके लिए परमेश्वर की अनुमति होनी आवश्यक है, अन्यथा सारी यांत्रिक व्यवस्था होने पर भी सब कुछ विफल रहेगा। सफलता का अन्तिम कारण दैव या परमेश्वर है। महाराज युधिष्ठिर जैसे राजा यह अच्छी तरह जानते थे कि राजा जनता के कल्याण कार्यों की देखभाल करनेवाला परमेश्वर का दूत होता है। वस्तुतः राज्य परमेश्वर की सम्पत्ति है। नदियाँ, समुद्र, जंगल, पर्वत, औषधियाँ इत्यादि मनुष्य की सृष्टियाँ नहीं हैं। ये सब परमेश्वर की सृष्टियाँ हैं और जीव को भगवान् की इस सम्पत्ति का उपयोग करने की अनुमति भगवान् की सेवा करने के लिए दी जाती है। आज का नारा यह है कि प्रत्येक वस्तु जनता के लिए है, अतएव सरकार जनता द्वारा, जनता के लिए है। लेकिन इस समय ईश्वर-चेतना तथा मानव जीवन की पूर्णता के आधार पर नई तरह की मानवता, अर्थात् ईश्वरीय साम्यवाद

की विचारधारा उत्पन्न करने के लिए संसार को महाराज युधिष्ठिर अथवा परीक्षित जैसे राजाओं के पदचिह्नों का अनुसरण करना होगा। परमेश्वर की इच्छा से प्रत्येक वस्तु की प्रचुरता है और हम इन वस्तुओं का उपभोग मनुष्य तथा मनुष्य के बीच, पशु तथा मनुष्य या प्रकृति के बीच, शत्रु भाव से रहित होकर सुखपूर्वक रहने के लिए कर सकते हैं। भगवान् का नियंत्रण सर्वत्र है और यदि भगवान् प्रसन्न हो जाँय, तो प्रकृति का कोना-कोना पुलकित हो जाए। तब नदियाँ उमड़कर भूमि को उर्वर बनाएँगी, समुद्र प्रचुर मात्रा में खनिज, मोती तथा रत्न प्रदान करेंगे, जंगल पर्याप्त ईंधन, औषधियाँ तथा वनस्पतियों की पूर्ति करेंगे और ऋतु-परिवर्तन से विपुल मात्रा में फल-फूल मिल सकेंगे। फैक्टरियों तथा औजारों पर आश्रित रहकर जीने की कृत्रिम शैली से, कुछ ही व्यक्तियों को, तथाकथित सुख प्राप्त हो सकेगा, और वह भी लाखों लोगों का सुख छीनकर। चूँकि जन-समूह की शक्ति फैक्टरी उत्पादन में लगी है, अतएव प्राकृतिक पदार्थों में गतिरोध आ रहा है और जन-समूह दुखी है। ठीक से शिक्षा पाये बिना, अधिकांश लोग प्राकृतिक भंडारों का दोहन करके स्वार्थी हेतु के पीछे-पीछे चले जा रहे हैं, अतएव व्यक्ति-व्यक्ति तथा राष्ट्र-राष्ट्र के बीच कड़ी स्पर्धा चल रही है। भगवान् के प्रशिक्षित दूत द्वारा नियन्त्रण नहीं हो रहा है। हमें यहीं पर तुलना करके आधुनिक सभ्यता के दोषों पर विचार करना चाहिए और मनुष्य को शुद्ध करने तथा कालदोष को मिटाने के लिए महाराज युधिष्ठिर के पदचिह्नों पर चलना चाहिए।

नाधयो व्याधयः क्लेशा दैवभूतात्महेतवः ।

अजातशत्रावभवन् जन्तूनां राज्ञि कर्हिचित् ॥ ६ ॥

**शब्दार्थ**

न—कभी नहीं; आधयः—चिन्ताएँ; व्याधयः—रोग; क्लेशाः—अधिक गर्मी तथा सर्दी से होनेवाला कष्ट; दैव-भूत-आत्म—शरीर, अलौकिक शक्ति तथा अन्य जीवों के कारण होनेवाले; हेतवः—के कारण से; अजात-शत्रौ—जिसके कोई शत्रु न हो, उनमें; अभवन्—घटित हुआ; जन्तूनाम्—समस्त जीवों का; राज्ञि—राजा में; कर्हिचित्—किसी भी समय।

चूँकि राजा का कोई शत्रु न था, अतएव सारे जीव, किसी भी समय मानसिक क्लेशों, रोगों या अत्यधिक ताप या शीत से विचलित नहीं थे।



**तात्पर्य :** मनुष्यों के प्रति अहिंसक होना तथा दीन पशुओं का शत्रु या हत्यारा बनना शैतानों का काम है। इस युग में दीन पशुओं के प्रति शत्रुता दिखाई जाती है, फलतः बेचारे प्राणी सदैव चिन्ताकुल रहते हैं। इन दीन पशुओं की प्रतिक्रिया मानव समाज पर लादी जा रही है, अतएव व्यक्तिरूप में, सामूहिक या राष्ट्रीय स्तर पर मनुष्यों के बीच सदैव शीत या गर्म युद्ध का तनाव बना रहता है। महाराज युधिष्ठिर के काल में पृथक्-पृथक् राष्ट्र न थे, भले ही भिन्न-भिन्न अधीनस्थ राज्य थे। सारा संसार एकता के सूत्र में बँधा हुआ था और सर्वोच्च नेता, युधिष्ठिर जैसा प्रशिक्षित राजा होने के कारण, सारे निवासियों को चिन्ता, रोगों तथा अत्यधिक ताप तथा शीत से मुक्त रखता था। वे न केवल आर्थिक रूप से सम्पन्न थे, अपितु शरीर से स्वस्थ थे और अलौकिक शक्ति से, अन्य जीवों के प्रति शत्रु भाव से तथा दैहिक एवं मानसिक क्लेशों से विचलित नहीं थे। बाँग्ला में एक कहावत है कि 'बुरा राजा राज्य को बिगाड़ देता है और बुरी गृहिणी परिवार को'—यही सत्य यहाँ भी लागू होता है। चूँकि राजा पवित्र था और भगवान् तथा मुनियों का आज्ञाकारी था, चूँकि उसका कोई शत्रु न था (अजात-शत्रु) और वह भगवान् का मान्य प्रतिनिधि था, तथा उनके ही द्वारा संरक्षित था, अतएव राजा के संरक्षण में सारी प्रजा एक प्रकार से भगवान् तथा उनके वैध दूतों के प्रत्यक्ष संरक्षण में थी। जब तक कोई स्वयं पवित्र न हो और भगवान् द्वारा मान्य न हो, तो वह अपने अधीनस्थ लोगों को सुखी नहीं बना सकता। मनुष्य तथा ईश्वर के बीच और मनुष्य तथा प्रकृति के बीच पूरा-पूरा सहयोग रहता है और मनुष्य तथा ईश्वर के बीच एवं मनुष्य तथा प्रकृति के बीच ऐसे सचेतन सहयोग से ही संसार में सुख, शान्ति तथा समृद्धि लाई जा सकती है जैसाकि राजा युधिष्ठिर में प्रदर्शित होता है। एक दूसरे के शोषण की प्रवृत्ति, जिसका आजकल बोलबाला है, केवल क्लेश ला सकती है।

उषित्वा हास्तिनपुरे मासान् कतिपयान् हरिः ।

सुहृदां च विशोकाय स्वसुश्च प्रियकाम्यया ॥ ७ ॥

## शब्दार्थ

उषित्वा—ठहर कर; हस्तिनापुरे—हस्तिनापुर नगर में; मासान्—महीने; कतिपयान्—कुछ; हरिः—भगवान् श्रीकृष्ण; सुहृदाम्—सम्बन्धियों को; च—भी; विशोकाय—सान्त्वना देने के लिए; स्वसुः—बहन को; च—तथा; प्रिय-काम्यया—प्रसन्न करने के लिए।

श्री हरि अपने सम्बन्धियों को सान्त्वना देने तथा अपनी बहन ( सुभद्रा ) को प्रसन्न करने के लिए कुछ महीने हस्तिनापुर में रहे।

तात्पर्य : कुरुक्षेत्र युद्ध के बाद एवं युधिष्ठिर के सिंहासनारूढ़ होने पर, श्रीकृष्ण को अपने राज्य द्वारका के लिए प्रस्थान करना था, लेकिन महाराज युधिष्ठिर को अनुगृहीत करने तथा भीष्मदेव पर विशेष अनुग्रह करने के लिए भगवान् कृष्ण पाण्डवों की राजधानी हस्तिनापुर में रुके रहे। भगवान् ने संतप्त राजा को सान्त्वना देने तथा अपनी बहन सुभद्रा को प्रसन्न करने के लिए भी रुकने का निश्चय किया। सुभद्रा को विशेष रूप से सान्त्वना दिये जाने की आवश्यकता थी, क्योंकि उसका एकमात्र पुत्र, अभिमन्यु, जिसकी शादी हाल ही में हुई थी, मारा गया था। वह युवक अपनी पत्नी, महाराज परीक्षित की माता, उत्तरा को छोड़कर मरा था। भगवान् को अपने भक्तों को प्रसन्न करने में प्रसन्नता होती है। केवल उनके भक्त ही उनके सम्बन्धियों की भूमिका अदा कर सकते हैं। भगवान् तो परम पूर्ण हैं।

आमन्त्र्य चाभ्यनुज्ञातः परिष्वज्याभिवाद्य तम् ।

आरुरोह रथं कैश्चित्परिष्वक्तोऽभिवादितः ॥ ८ ॥

## शब्दार्थ

आमन्त्र्य—अनुमति लेकर; च—तथा; अभ्यनुज्ञातः—आज्ञा पाकर; परिष्वज्य—आलिंगन करके; अभिवाद्य—चरणों पर झुककर; तम्—महाराज युधिष्ठिर को; आरुरोह—आरूढ़ हुए; रथम्—रथ में; कैश्चित्—किन्हीं के द्वारा; परिष्वक्तः—आलिंगित होकर; अभिवादितः—अभिवादन किया जाकर।

तत्पश्चात् जब भगवान् ने प्रस्थान करने की अनुमति माँगी और राजा ने अनुमति दे दी तो भगवान् ने महाराज युधिष्ठिर के चरणों में नतमस्तक होकर प्रणाम किया और राजा ने उनको गले लगा लिया। इसके बाद अन्यों द्वारा गले मिलने एवं नमस्कृत होकर, वे अपने रथ में आरूढ़ हुए।

**तात्पर्य :** महाराज युधिष्ठिर भगवान् कृष्ण के बड़े फुफेरे भाई थे, अतएव उनसे विदा होते समय, भगवान् राजा के चरणों में नतमस्तक हुए। राजा ने छोटे भाई की तरह उनका आलिंगन किया, यद्यपि राजा भलीभाँति जानते थे कि कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। भगवान् को प्रसन्नता होती है जब उनका कोई भक्त उन्हें प्रेम में, अपने से घटकर समझता है। भगवान् से बढ़कर या उनके समान अन्य कोई भी नहीं है, तो भी वे अपने भक्तों द्वारा छोटा समझे जाने पर प्रसन्न होते हैं। ये सब भगवान् की दिव्य लीलाएँ हैं। निर्विशेषवादी भगवद्भक्त के द्वारा निभाई जाने-वाली अलौकिक भूमिका को समझ नहीं सकते। तत्पश्चात् भीम तथा अर्जुन भगवान् को गले मिले, क्योंकि वे समवयस्क थे, लेकिन नकुल तथा सहदेव ने उन्हें प्रणाम किया, क्योंकि वे उनसे छोटे थे।

सुभद्रा द्रौपदी कुन्ती विराटतनया तथा ।  
 गान्धारी धृतराष्ट्रश्च युयुत्सुगौतमो यमौ ॥ ९ ॥  
 वृकोदरश्च धौम्यश्च स्त्रियो मत्स्यसुतादयः ।  
 न सेहिरे विमुह्यन्तो विरहं शार्ङ्गधन्वनः ॥ १० ॥

### शब्दार्थ

सुभद्रा—कृष्ण की बहन; द्रौपदी—पाण्डवों की पत्नी; कुन्ती—पाण्डवों की माता; विराट-तनया—विराट की पुत्री ( उत्तरा ); तथा—भी; गान्धारी—दुर्योधन की माता; धृतराष्ट्रः—दुर्योधन का पिता; च—तथा; युयुत्सुः—धृतराष्ट्र की वैश्य-पत्नी का पुत्र; गौतमः—कृपाचार्य; यमौ—जुड़वाँ भाई नकुल तथा सहदेव; वृकोदरः—भीम; च—तथा; धौम्यः—धौम्य; च—तथा; स्त्रियः—राजमहल की अन्य स्त्रीयाँ भी; मत्स्य-सुता-आदयः—मछुवारे की पुत्री ( सत्यवती, भीष्म की सौतेली माता ); न—नहीं; सेहिरे—सह सर्की; विमुह्यन्तः—मूर्छित सी; विरहम्—वियोग; शार्ङ्ग-धन्वनः—श्रीकृष्ण का जो अपने हाथ में शंख धारण किये रहते हैं।

उस समय सुभद्रा, द्रौपदी, कुन्ती, उत्तरा, गान्धारी, धृतराष्ट्र, युयुत्सु, कृपाचार्य, नकुल, सहदेव, भीमसेन, धौम्य तथा सत्यवती, सभी मूर्छित से हो गये, क्योंकि भगवान् कृष्ण का वियोग सह पाना उन सबों के लिए असम्भव था।

**तात्पर्य :** भगवान् श्रीकृष्ण जीवों के लिए, विशेष रूप से भक्तों के लिए, इतने आकर्षक हैं कि उनका वियोग असह्य हो जाता है। बद्धजीव, माया के वशीभूत होकर ही भगवान् को भूल जाता है, अन्यथा ऐसा हो नहीं सकता। ऐसे वियोग की अनुभूति का वर्णन नहीं किया जा सकता,

उसका अनुमान केवल भक्त ही कर सकते हैं। वृन्दावन तथा सीधे सादे ग्रामीण ग्वाल-बालों, बालिकाओं, स्त्रियों तथा अन्यों से श्रीकृष्ण का वियोग सबों को आजीवन आघात पहुँचाता रहा और अत्यन्त प्रिय गोपकुमारी राधारानी का वियोग तो अवर्णनीय है। वे एक बार सूर्यग्रहण के समय कुरुक्षेत्र में मिले और उन्हें जैसी अनुभूति हुई वह हृदय-विदारक है। निस्सन्देह भगवान् के दिव्य भक्तों के गुणों में अन्तर है, लेकिन जिन्होंने कभी भगवान् का सान्निध्य प्राप्त किया है, वे उन्हें क्षण भर के लिए भी नहीं छोड़ सकते। शुद्ध भक्त की यही मनोवृत्ति होती है।

सत्सङ्गान्मुक्तदुःसङ्गो हातुं नोत्सहते बुधः ।  
 कीर्त्यमानं यशो यस्य सकृदाकर्ण्य रोचनम् ॥ ११ ॥  
 तस्मिन्त्यस्तधियः पार्थाः सहेरन् विरहं कथम् ।  
 दर्शनस्पर्शसंलापशयनासनभोजनैः ॥ १२ ॥

### शब्दार्थ

सत्-सङ्गात्—शुद्ध भक्तों की संगति से; मुक्त-दुःसङ्गः—बुरी भौतिक संगति से मुक्त; हातुम्—परित्याग करने के लिए; न उत्सहते—कभी प्रयास नहीं करता है; बुधः—भगवान् को समझनेवाला; कीर्त्यमानम्—यशोगान करता; यशः—ख्याति; यस्य—जिसका; सकृत्—मात्र एक बार; आकर्ण्य—केवल सुनकर; रोचनम्—प्रसन्न करके; तस्मिन्—उसमें; न्यस्त-धियः—जिसने अपना मन उनको अर्पित कर रखा है; पार्थाः—पृथा के पुत्र; सहेरन्—सह सकते हैं; विरहम्—वियोग; कथम्—कैसे; दर्शन—आमने-सामने देखते हुए; स्पर्श—स्पर्श करते हुए; संलाप—परस्पर बातें करते; शयन—सोते; आसन—बैठते; भोजनैः—एक साथ भोजन करते।

वह बुद्धिमान जिस ने शुद्ध भक्तों की संगति से परमेश्वर को समझ लिया है और भौतिक कुसंगति से अपने को छुड़ा लिया है, वह भगवान् के यश को सुनने से चूकेगा नहीं; उसने चाहे उनके विषय में एक ही बार क्यों न सुना हो। तो भला, पाण्डव उनके वियोग को कैसे सह पाते? क्योंकि वे उनसे घनिष्ठतापूर्वक सम्बन्धित थे, वे उन्हें साक्षात् अपने समक्ष देखते थे, उनका स्पर्श करते थे, उनसे बातें करते थे और उन्हीं के पास सोते, उठते-बैठते तथा भोजन करते थे।

तात्पर्य : जीव की स्वाभाविक स्थिति अपने से वरिष्ठ की सेवा करना है। उसे इन्द्रिय-तृप्ति की विभिन्न अवस्थाओं में, माया की आज्ञाओं का पालन करने के लिए बाध्य होना पड़ता है और इन्द्रियों की सेवा करने में वह कभी थकता नहीं। यदि वह थक भी जाय, तो माया उसे इन्द्रियों

की सेवा करने के लिए निरन्तर बाध्य करती है और कभी सन्तुष्ट नहीं होती। ऐसे इन्द्रियतृप्ति-व्यापारों का कोई अन्त नहीं है और बद्धजीव छूटने की आशा के बिना ऐसी सेवा में उलझा रहता है। छुटकारा केवल तभी मिलता है, जब शुद्ध भक्तों की संगति होती है। ऐसी संगति से वह धीरे-धीरे अपनी दिव्य चेतना की ओर उन्नत होता है। इस प्रकार वह जान सकता है कि उसकी शाश्वत स्थिति भगवान् की सेवा करने के लिए है, विकृत इन्द्रियों की काम, क्रोध, प्रभुत्व जताने इत्यादि की इच्छा-पूर्ति के लिए नहीं है। भौतिक समाज, मित्रता तथा प्रेम कामवासना की विभिन्न अवस्थाएँ हैं। घर, देश, परिवार, समाज, सम्पत्ति तथा अन्य वस्तुएँ भौतिक जगत् में बन्धन के कारणस्वरूप हैं, जहाँ तीन प्रकार के ताप बने हुए हैं। शुद्ध भक्तों की संगति से तथा विनीत भाव से उनका श्रवण करने से भौतिक भोग के प्रति आसक्ति कम होती है और भगवान् के दिव्य कार्यकलापों के विषय में सुनने के प्रति आकर्षण की प्रधानता होती है। एक बार आकर्षण उत्पन्न हो जाने पर वह बिना रुके चलता रहता है, जिस प्रकार बारूद की आग। ऐसा कहा गया है कि श्री हरि दिव्य रूप से इतने आकर्षक हैं कि जो आत्म-साक्षात्कार द्वारा अपने आप में ही सन्तुष्ट हैं और वास्तव में सारे भव-बन्धनों से मुक्त हो चुके हैं, वे भी भगवान् के भक्त बन जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में यह भलीभाँति समझा जा सकता है कि पाण्डवों की क्या स्थिति हुई होगी, जो भगवान् के नित्य संगी थे? वे श्रीकृष्ण के वियोग की कल्पना भी नहीं कर सकते थे, क्योंकि निरन्तर व्यक्तिगत सम्पर्क के कारण उनका आकर्षण अत्यधिक प्रगाढ़ था। शुद्ध भक्त के लिए भी उनके रूप, गुण, नाम, यश, कार्यकलाप आदि का स्मरण इतना आकर्षक होता है कि वह संसार के सारे रूप, गुण, नाम, यश, कार्यकलाप भूल जाता है और शुद्ध भक्तों की परिपक्व संगति के कारण वह क्षण भर के लिए भी भगवान् के सम्पर्क से दूर नहीं होता।

सर्वे तेऽनिमिषैरक्षैस्तमनुद्गतचेतसः ।

वीक्षन्तः स्नेहसम्बद्धा विचेलुस्तत्र तत्र ह ॥ १३ ॥

## शब्दार्थ

सर्वे—सभी; ते—वे; अनिमिषैः—बिना पलक झपके; अक्षैः—आँखों से; तम् अनु—उनके पीछे-पीछे; द्रुत-चेतसः—द्रवित हृदय; वीक्षन्तः—उनको देखते हुए; स्नेह-सम्बन्धाः—शुद्ध प्रेम से बँधे; विचेलुः—हिलने-डुलने लगे; तत्र तत्र—इधर-उधर; ह—उन्होंने ऐसा किया।

उन सबके हृदय उनके आकर्षण-रूपी पात्र में द्रवित हो रहे थे। वे उन्हें अपलक नेत्रों से देख रहे थे और ( स्नेह-बन्धन में बँधकर ) व्यग्रता से इधर-उधर मचल रहे थे।

तात्पर्य : कृष्ण स्वाभाविक रूप से सभी जीवों के लिए आकर्षक हैं, क्योंकि वे समस्त शाश्वतों में प्रधान शाश्वत हैं। एकमात्र वे ही अनेकों शाश्वतों के पालक हैं। यह कठोपनिषद् का कथन है और इस प्रकार मनुष्य भगवान् के साथ अपने शाश्वत सम्बन्ध को जागृत करके—जिसे वह भगवान् की भ्रामक शक्ति माया के चक्र से वशीभूत होकर भूल चुका है—स्थायी शान्ति तथा समृद्धि प्राप्त कर सकता है। एक बार भी यह सम्बन्ध जब हल्का सा भी पुनर्जागरित हो जाता है, बद्धजीव भौतिक शक्ति के भ्रम से मुक्त हो जाता है और भगवान् की संगति के लिए पागल हो उठता है। यह संगति केवल भगवान् के साक्षात् सम्पर्क से ही नहीं स्थापित होती, अपितु उनके नाम, यश, रूप, तथा गुणों के सान्निध्य से भी होती है। श्रीमद्भागवत बद्धजीवों को इस सिद्ध अवस्था को प्राप्त करने के लिए शुद्ध भक्त से विनीत भाव से श्रवण के द्वारा प्रशिक्षित करता है।

न्यरुन्धन्नुद्गलद्वाष्पमौत्कण्ठ्याद्देवकीसुते ।

निर्यात्यगारात्रोऽभद्रमिति स्याद्बान्धवस्त्रियः ॥ १४ ॥

## शब्दार्थ

न्यरुन्धन्—बड़ी मुश्किल से रोकते हुए; उद्गलत्—उमड़ते हुए; बाष्पम्—आँसुओं को; औत्कण्ठ्यात्—अत्यधिक उत्सुकता से; देवकी-सुते—देवकी के पुत्र में; निर्याति—बाहर निकल कर; अगारात्—महल से; नः—नहीं; अभद्रम्—अशुभ; इति—इस प्रकार; स्यात्—होए; बान्धव—सम्बन्धियों की; स्त्रियः—स्त्रियाँ।

सगी-सम्बन्धी ( नातेदार ) स्त्रियाँ, जिनके नेत्रों से कृष्ण के लिए व्याकुलतावश अश्रुधारा निकल रही थी, महल से बाहर आ गईं। वे बड़ी मुश्किल से अपने आँसू रोक पाईं। उन्हें भय था कि प्रस्थान के अवसर पर आँसुओं से अपशकुन हो सकता है।

तात्पर्य : हस्तिनापुर के राजमहल में सैकड़ों महिलाएँ थीं। वे सभी कृष्ण के प्रति स्नेहमयी थीं। वे सभी उनकी रिश्तेदार भी थीं। जब उन्होंने देखा कि कृष्ण अपनी मातृभूमि को जाने के

लिए महल से निकल रहे हैं, तो वे उनके लिए अत्यन्त व्याकुल हो उठें और जैसा स्वाभाविक था, उनके अश्रु ढुलक-ढुलक कर कपोलों पर आने लगे। उसी समय उन्होंने सोचा कि उस समय उनके अश्रु कृष्ण के लिए अमंगलसूचक हो सकते हैं, अतएव उन्होंने अश्रुओं को रोकना चाहा। ऐसा करना उनके लिए बहुत कठिन था, क्योंकि अश्रु रुक नहीं पा रहे थे। अतः उन्होंने आँखों के अश्रुओं को पोंछा और उनके हृदय धड़कने लगे। वे स्त्रियाँ जिनके पति या श्वसुर युद्ध में मारे गये थे, कृष्ण के प्रत्यक्ष सम्पर्क में नहीं आ सकीं थीं। लेकिन वे सब कृष्ण तथा उनके महान कार्यों के विषय में सुनती रहती थीं। इस प्रकार वे उनके विषय में सोचतीं, उनके नाम तथा यश के विषय में बातें करतीं और उन स्त्रियों के समान स्नेहिल हो गई थीं जो उनके प्रत्यक्ष सम्पर्क में थीं। अतएव जो कोई भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृष्ण के विषय में सोचता है, कृष्ण के विषय में बातें करता है या कृष्ण की पूजा करता है, वह उनके प्रति अनुरक्त हो जाता है। चूँकि कृष्ण परम पूर्ण हैं, अतः उनके नाम, रूप, गुण आदि में कोई अन्तर नहीं है। हम कृष्ण के साथ अपने घनिष्ठ सम्बन्ध को उनके विषय में बातें करके, श्रवण करके या स्मरण करके पुनरुज्जीवित कर सकते हैं। आध्यात्मिक सामर्थ्य से ही ऐसा हो पाता है।

मृदङ्गशङ्खभेर्यश्च वीणापणवगोमुखाः ।

धुन्धुर्यानकघण्टाद्या नेदुर्दुन्दुभयस्तथा ॥ १५ ॥

**शब्दार्थ**

मृदङ्ग—मीठी ध्वनि उत्पन्न करनेवाला ढोल; शङ्ख—शंख; भेर्यः—भेरी; च—तथा; वीणा—तंतुयुक्त वाद्ययन्त्र, वीणा; पणव—एक प्रकार की वंशी; गोमुखाः—अन्य प्रकार की बाँसुरी; धुन्धुरी—एक प्रकार का ढोल; आनक—नगाड़ा; घण्टा—बजाया जानेवाला घंटा; आद्याः—इत्यादि; नेदुः—बजे; दुन्दुभयः—विभिन्न प्रकार के ढोल; तथा—उस समय।

हस्तिनापुर के राजमहल से भगवान् के प्रस्थान समय, उनके सम्मान में विभिन्न प्रकार के ढोल—यथा मृदंग, ढोल, नगाड़े, धुंधुरी तथा दुन्दुभी—एवं तरह-तरह की वंशियाँ, वीणा, गोमुख और भेरियाँ एकसाथ बज उठे।

प्रासादशिखरारूढाः कुरुनार्यो दिदक्षया ।

ववृषुः कुसुमैः कृष्णं प्रेमव्रीडास्मितेक्षणाः ॥ १६ ॥

## शब्दार्थ

प्रासाद—राजमहल की; शिखर—छत पर; आरूढाः—चढ़ी हुई; कुरु-नार्यः—कुरुराजवंश की नारियाँ; दिदृक्षया—देखने की इच्छा से; ववृषुः—वर्षा की; कुसुमैः—फूलों से; कृष्णम्—भगवान् कृष्ण पर; प्रेम—प्रेम तथा स्नेहवश; व्रीडा-स्मित-ईक्षणाः—लज्जिली हँसी से देखते हुए।

भगवान् को देखने की प्रेममयी इच्छा से कुरुओं की राजवंशी स्त्रियाँ राजमहल की छत पर चढ़ गईं और स्नेह तथा लज्जा से युक्त हँसती हुई भगवान् पर पुष्पों की वर्षा करने लगीं।

तात्पर्य : लज्जा स्त्रियों का विशिष्ट अतिरिक्त प्राकृतिक सौंदर्य है, और इसके कारण उन्हें पुरुषों से आदर मिलता है। महाभारत काल में अर्थात् पाँच हजार से अधिक समय पूर्व भी यह प्रथा प्रचलित थी। जो लोग विश्व इतिहास से परिचित नहीं हैं, ऐसे कम बुद्धि वाले लोग ही कहते हैं कि पुरुषों से स्त्रियों को पृथक् रखने की प्रथा भारत में मुसलमानों के आगमन में चालु हुई। महाभारत की यह घटना निश्चित रूप से यह सिद्ध करती है कि राजमहल की स्त्रियाँ पर्दा करती थीं (पुरुषों से बहुत कम मिलती थीं) और वे सब, नीचे न आकर जहाँ कृष्ण थे, राजमहल की छत पर चढ़ गईं और वहीं से कृष्ण के प्रति सम्मान जताने के लिए उन पर पुष्पों की वर्षा करने लगीं। यहाँ यह भी कहा गया है कि महल की छत पर स्त्रियाँ लज्जा के कारण मुस्करा भी रही थीं। यह लज्जा स्त्रियों को प्रकृति का वरदान है, इससे उनकी सुन्दरता तथा प्रतिष्ठा में वृद्धि होती है, भले ही वे उच्चकुल की न भी हों या कम सुन्दर हों। हमें इसका निजी अनुभव है। एक मेहतरानी स्त्रियोचित लज्जा के कारण अनेक भद्र पुरुषों की श्रद्धा-भाजन बनी हुई थी। सड़क पर घूमनेवाली अर्धनग्न नारियाँ सम्मान नहीं प्राप्त कर पातीं, लेकिन एक लज्जाशील मेहतरानी सबों से सम्मान पाती है।

मानव सभ्यता मनुष्य को माया के चंगुल से छूटने में सहायक बनने के लिए है, जैसाकि भारत के ऋषियों-मुनियों की संकल्पना थी। स्त्री की भौतिक सुन्दरता मोह है, क्योंकि शरीर वास्तव में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, इत्यादि से बना हुआ है। लेकिन पदार्थ के साथ जीवन्त स्फुलिंग का संयोग है, अतएव यह सुन्दर लगता है। कोई मिट्टी की गुड़िया के प्रति आकृष्ट नहीं होता, यद्यपि यह दूसरों का ध्यान आकृष्ट करने के उद्देश्य से अच्छी से अच्छी बनाई जाती है। मृत



शरीर में कोई सौंदर्य नहीं होता, क्योंकि कोई भी तथाकथित सुन्दर स्त्री के मृत शरीर को स्वीकार नहीं करेगा। अतएव निष्कर्ष यह निकला कि आत्मा का स्फुलिंग ही सुन्दर है और आत्मा की सुन्दरता से ही मनुष्य बाह्य शरीर के सौंदर्य के प्रति आकृष्ट होता है। इसीलिए वैदिक ज्ञान हमें झूठी सुन्दरता के प्रति आकृष्ट होने से मना करता है। लेकिन चूँकि अब हम अविद्या के अन्धकार में हैं, अतएव वैदिक सभ्यता स्त्री तथा पुरुष को मिलने की सीमित छूट देती है। वेदों का कहना है कि स्त्री अग्नि तुल्य है और मनुष्य नवनीत (मक्खन) के समान है। नवनीत अग्नि के संसर्ग से अवश्य पिघलता है, अतएव आवश्यकता पड़ने पर ही उन्हें पास-पास लाना चाहिए। और लज्जा ही अनियन्त्रित मिलने-जुलने पर प्रतिबन्ध-स्वरूप है। यह प्रकृति का वरदान है और इसका उपयोग होना चाहिए।

सितातपत्रं जग्राह मुक्तादामविभूषितम् ।

रत्नदण्डं गुडाकेशः प्रियः प्रियतमस्य ह ॥ १७ ॥

**शब्दार्थ**

सित-आतपत्रम्—सुखद छाता; जग्राह—ले लिया; मुक्ता-दाम—मोतियों तथा झालर से सजा; विभूषितम्—किनारी लगा; रत्न-दण्डम्—रत्नों के हथके वाला; गुडाकेशः—अर्जुन, पटु योद्धा के रूप में अथवा जिसने नींद जीत ली है; प्रियः—अत्यन्त प्यारा; प्रियतमस्य—अत्यन्त प्रिय का; ह—ऐसा ही किया।

उस समय महान् योद्धा तथा निद्रा को जीतनेवाले अर्जुन ने, जो परम प्रिय भगवान् का घनिष्ठ मित्र था, एक छाता ले लिया जिसका हथका रत्नों का था और जिसमें मोतियों की झालर लगी थी।

**तात्पर्य** : विलासपूर्ण राजसी उत्सवों में सोना, रत्न, मोती तथा मूल्यवान पत्थरों का प्रयोग होता था। ये सब प्रकृति के उपहार हैं और भगवान् के आदेश से पर्वतों, समुद्रों द्वारा उत्पन्न किये जाते हैं और तब वे उत्पन्न होते हैं, जब मनुष्य आवश्यकता के नाम पर व्यर्थ वस्तुओं के निर्मित करने में अपना अमूल्य समय नहीं गँवाता। औद्योगिक उपक्रमों के तथाकथित विकास से वे सोना, चाँदी, पीतल तथा ताँबा जैसी धातुओं के बजाय गटापारचा के बर्तनों को काम में लाते हैं।

वे शुद्ध घी (मार्गरीन) के स्थान पर कृत्रिम घी का प्रयोग कर रहे हैं और शहरी जनसंख्या के चौथाई भाग के पास रहने के लिए कोई आश्रयस्थान नहीं है।

उद्धवः सात्यकिश्चैव व्यजने परमाद्भुते ।

विकीर्यमाणः कुसुमै रेजे मधुपतिः पथि ॥ १८ ॥

### शब्दार्थ

उद्धवः—कृष्ण का चचेरा भाई; सात्यकिः—उनका सारथी; च—तथा; एव—निश्चय ही; व्यजने—पंखा झलने में व्यस्त; परम-अद्भुते—सजावटी; विकीर्यमाणः—बिखरे हुए ( फूलों ) पर आसीन; कुसुमैः—फूलों से; रेजे—आदेश दिया; मधु-पतिः—मधु के स्वामी ( कृष्ण ) ने; पथि—मार्ग पर।

उद्धव तथा सात्यकि अलंकृत पंखों से भगवान् पर पंखा झलने लगे और मधु के स्वामी कृष्ण ने बिखरे हुए पुष्पों पर आसीन होकर उन्हें मार्ग पर चलने के लिए आदेश दिया।

अश्रूयन्ताशिषः सत्यास्तत्र तत्र द्विजेरिताः ।

नानुरूपानुरूपाश्च निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥ १९ ॥

### शब्दार्थ

अश्रूयन्त—सुना जाकर; आशिषः—आशीर्वाद; सत्याः—सभी सच हैं; तत्र—यहाँ; तत्र—वहाँ; द्विज-ईरिताः—विद्वान् ब्राह्मणों द्वारा उच्चरित; न—नहीं; अनुरूप—अनुरूप; अनुरूपाः—योग्य; च—भी; निर्गुणस्य—परम का; गुण-आत्मनः—मनुष्य की भूमिका निभाते हुए।

जहाँ-तहाँ यह सुनाई पड़ रहा था कि कृष्ण को दिये गये आशीर्वाद, न तो उनके उपयुक्त हैं, न अनुपयुक्त, क्योंकि वे सब उन परम पुरुष के लिए थे जो इस समय मनुष्य की भूमिका निभा रहे थे।

तात्पर्य : जगह-जगह भगवान् श्रीकृष्ण को आशीर्वाद देने के उद्देश्य से वैदिक ध्वनियाँ हो रही थीं। ये आशीर्वाद इस अर्थ में उपयुक्त थे, कि भगवान् एक सामान्य मनुष्य की-सी भूमिका निभा रहे थे मानो वे महाराज युधिष्ठिर के फुफेरे भाई हों। लेकिन ये अनुपयुक्त भी थे, क्योंकि भगवान् परम पुरुष हैं और उन्हें भौतिक रिश्ते-नातों से कुछ भी लेना-देना नहीं होता। वे तो निर्गुण अर्थात् भौतिक गुणों से रहित हैं, फिर भी वे दिव्य गुणों से ओतप्रोत हैं। दिव्य जगत में कुछ भी विरोधाभासी नहीं होता, जबकि इस सापेक्ष जगत में सभी चीजें इसके उलट होती हैं।

उदाहरणार्थ, इस सापेक्ष जगत में श्वेत का विलोम श्याम होता है, लेकिन दिव्य जगत में श्वेत तथा श्याम में कोई अन्तर नहीं होता। अतएव परम पुरुष के प्रसंग में यत्र-तत्र विद्वान् ब्राह्मणों द्वारा उच्चरित आशीर्वादात्मक ध्वनियाँ विलोम लग रही थीं, लेकिन जब वे परम पुरुष पर लागू होती हैं तो सारा विरोधाभास दूर हो जाता है और वे दिव्य बन जाती हैं। एक उदाहरण इस बात को स्पष्ट कर देगा। भगवान् श्रीकृष्ण को कभी-कभी चोर कहा जाता है। अपने शुद्ध भक्तों में वे माखनचोर के नाम से अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। वे बचपन में वृन्दावन में अपने पड़ोसियों के घरों से माखन चुराते थे। तब से वे चोर-रूप में प्रसिद्ध हैं। लेकिन चोर के रूप में प्रसिद्ध होने पर भी उनकी चोर के रूप में पूजा की जाती है, जबकि सांसारिक जगत में चोर की कभी प्रशंसा नहीं की जाती और उसे दंडित किया जाता है। चूँकि वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, अतएव उन पर सब कुछ लागू होता है और समस्त विरोधाभासों के बावजूद वे भगवान् बने रहते हैं।

अन्योन्यमासीत्सञ्जल्प उत्तमश्लोकचेतसाम् ।

कौरवेन्द्रपुरस्त्रीणां सर्वश्रुतिमनोहरः ॥ २० ॥

### शब्दार्थ

अन्योन्यम्—एक दूसरे में; आसीत्—था; सञ्जल्पः—बात; उत्तम-श्लोक—परमेश्वर, जिनकी प्रशंसा चुने हुए श्लोकों से की जाती है; चेतसाम्—जिनके हृदय इस प्रकार लीन हैं उनका; कौरव-इन्द्र—कुरुओं का राजा; पुर—राजधानी; स्त्रीणाम्—स्त्रियों का; सर्व—समस्त; श्रुति—वेद; मनः-हरः—मन को मोहित करनेवाला।

चुने हुए छन्दों से जिनकी स्तुति की जाती है, ऐसे भगवान् के दिव्य गुणों के विचार में डूबीं, हस्तिनापुर के सभी घरों की छतों पर चढ़ी हुई स्त्रियाँ, उनके विषय में बातें करने लगीं। ये बातें वैदिक स्तोत्रों से कहीं अधिक आकर्षक थीं।

तात्पर्य : भगवद्गीता में कहा गया है कि समस्त वैदिक वाङ्मय का लक्ष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण हैं। वस्तुतः भगवान् का यशोगान वेदों, रामायण तथा महाभारत जैसे ग्रंथों में अंकित है। और भागवत में तो विशेष रूप से परमेश्वर का यशोगान हुआ है। अतएव जब कुरुवंश के राजाओं की राजधानी में घरों की छतों पर स्त्रियाँ भगवान् के विषय में बातें कर रही थीं, तो उनकी बातें वैदिक स्तोत्रों से अधिक मनोहर लग रही थीं। भगवान् की प्रशंसा में जो भी गाया

जाय, वह श्रुतिमन्त्र है। गौड़ीय सम्प्रदायके आचार्य ठाकुर नरोत्तमदास ने सरल बाँग्ला भाषा में अनेक गीत लिखे हैं। लेकिन उसी सम्प्रदाय के एक अत्यन्त अन्य विद्वान आचार्य ठाकुर विश्वनाथ चक्रवर्ती ने नरोत्तमदास के इन गीतों को वैदिक-मन्त्रों के ही समान बताया है। इसका कारण है इनकी विषयवस्तु। भाषा का उतना महत्त्व नहीं है, विषयवस्तु की महत्ता होती है। उन सारी स्त्रियों में, जो कि भगवान् के विचार तथा कार्यों में लीन थीं, भगवान् की कृपा से वैदिक वाङ्मय की सी चेतना का विकास हो आया था। अतएव, भले ही वे स्त्रियाँ संस्कृत की अच्छी विद्वान न रही हों, तो भी उनकी बातें वैदिक स्तोत्रों की अपेक्षा अधिक मनोहर लग रही थीं। उपनिषदों में वैदिक स्तोत्र कभी-कभी अप्रत्यक्ष रूप से परमेश्वर के प्रति व्यक्त होते हैं। लेकिन स्त्रियों की बातें प्रत्यक्ष रूप से भगवान् के विषय में थीं, अतएव वे अधिक हृदयग्राही थीं। स्त्रियों की बातें विद्वान ब्राह्मणों के आशीर्वादों से अधिक मूल्यवान लग रही थीं।

स वै किलायं पुरुषः पुरातनो  
 य एक आसीदविशेष आत्मनि ।  
 अग्रे गुणेभ्यो जगदात्मनीश्वरे  
 निमीलितात्मनिशि सुप्तशक्तिषु ॥ २१ ॥

### शब्दार्थ

सः—वे ( कृष्ण ) ; वै—जैसा मुझे स्मरण है; किल—निश्चित रूप से; अयम्—यह; पुरुषः—भगवान्; पुरातनः—आदि;  
 यः—जो; एकः—एकमात्र; आसीत्—विद्यमान थे; अविशेषः—भौतिक रूप से अव्यक्त; आत्मनि—स्वयं; अग्रे—सृष्टि  
 के पूर्व; गुणेभ्यः—प्रकृति के गुणों का; जगत्-आत्मनि—परमात्मा में; ईश्वरे—भगवान् में; निमीलित—लीन; आत्मन्—  
 जीव; निशि सुप्त—रात्रि में सोया हुआ; शक्तिषु—शक्तियों का।

वे कहने लगीं : जैसा हमें निश्चित रूप से स्मरण है, यही हैं वे, जो आदि परमेश्वर हैं। प्रकृति के गुणों की व्यक्त सृष्टि के पूर्व, वे ही अकेले विद्यमान थे। चूँकि वे परमेश्वर हैं, अतएव सारे जीव उन्हीं में लीन होते हैं, मानो रात्रि में सोये हुए हों और उनकी शक्ति रुक गई हो।

तात्पर्य : इस दृश्य जगत का विलय दो प्रकार से होता है। हर ४,३२,००,००,००० सौर वर्षों के बाद, जब एक ब्रह्माण्ड विशेष के स्वामी, ब्रह्मा, शयन करते हैं तो एक प्रलय होता है। ब्रह्मा

की एक सौ वर्ष की आयु के अन्त में (हमारी गणना के अनुसार ८,६४,००,००,००० X ३० X १२ X १०० सौर वर्ष) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का पूर्ण प्रलय होता है और दोनों ही बार, महत्त्व अर्थात् भौतिक शक्ति तथा जीवत्व अर्थात् तटस्था शक्ति, भगवान् के शरीर में लीन हो जाती हैं। सारे जीव भगवान् के शरीर में तब तक सुप्त रहते हैं, जब तक जगत की दूसरी सृष्टि नहीं हो जाती। भौतिक जगत की सृष्टि, पालन तथा संहार का यही विधान है।

भगवान् द्वारा गतिमान किये जाने पर, भौतिक प्रकृति के तीन गुणों की अन्तःक्रिया से भौतिक सृष्टि होती है, इसीलिए यहाँ पर कहा गया है कि भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों के गतिमान होने के पूर्व भगवान् विद्यमान थे। श्रुति मन्त्र में कहा गया है कि सृष्टि के पूर्व केवल सर्वोपरि भगवान् विष्णु का अस्तित्व था, तब न तो ब्रह्मा थे, न शिव, न ही कोई अन्य देवता। विष्णु का अर्थ है महाविष्णु, जो कारणार्णव समुद्र में लेटे हुए हैं। उनकी श्वास से ही सारे ब्रह्माण्ड बीज-रूप में उत्पन्न होते हैं और धीरे-धीरे प्रत्येक ब्रह्माण्ड के भीतर असंख्य ग्रहों का विराट रूप विकसित होता है। ब्रह्माण्डों के बीज उसी तरह विशाल आकार ग्रहण करते हैं, जिस प्रकार एक वटवृक्ष के बीजों से असंख्य वटवृक्ष विकसित हो आते हैं।

ये महाविष्णु भगवान् श्रीकृष्ण के पूर्ण अंश हैं, जिनका उल्लेख ब्रह्म-संहिता में इस प्रकार हुआ है—

“मैं उन आदि भगवान् गोविन्द को सादर नमस्कार करता हूँ, जिनके पूर्ण अंश महाविष्णु हैं। ब्रह्माण्डों के अगुवा सारे ब्रह्मा, उनके दिव्य शरीर के रोमकूपों से उत्पन्न ब्रह्माण्डों के पश्चात्, उतने ही समय तक जीवित रहते हैं जितने में भगवान् श्वास छोड़ते हैं।” (ब्रह्म-संहिता ५.५८)

इस प्रकार गोविन्द अर्थात् भगवान् कृष्ण महाविष्णु के भी कारण-स्वरूप हैं। स्त्रियों ने यह वैदिक सत्य किसी प्रामाणिक स्रोत से सुन रखा होगा, तभी वे इसके विषय में बातें कर रही थीं। दिव्य विषयों के सही-सही ज्ञान पाने का एकमात्र साधन होता है, कोई प्रामाणिक स्रोत। इसका कोई विकल्प नहीं है।

महाविष्णु के शरीर में जीवों का प्रवेश, ब्रह्मा के एक सौ वर्ष बाद स्वतः हो जाता है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि व्यक्तिगत जीव अपनी सत्ता (पहचान) खो देता है। सत्ता तो बनी ही रहती है और ज्योंही भगवान् की परम इच्छा से दूसरी सृष्टि होती है, तो सारे सुप्त, निष्क्रिय जीवों को छोड़ दिया जाता है, जिससे वे अपने पूर्व जीवन के विभिन्न कार्यक्षेत्रों के अनुसार अपने कार्यों को आगे बढ़ा सकते हैं। यह *सुप्तोत्थित* न्याय अर्थात् 'निद्रा से जगकर पुनः अपने कर्म में लग जाना' कहलाता है। रात्रि में जब मनुष्य सोता है, तब वह यह भूल जाता है कि वह कौन है, उसका क्या कर्तव्य है और वह जगते समय की सारी बातें भूल जाता है। किन्तु ज्योंही वह नींद से उठता है, तो उसे जो कुछ करना होता है, सब स्मरण हो आता है और वह फिर से अपने कार्यकलाप में लग जाता है। सारे जीव भी, प्रलय के समय, महाविष्णु के शरीर में लीन रहते हैं, किन्तु ज्योंही दूसरी सृष्टि होती है, वे उठकर अपना अधूरा काम पूरा करने लगते हैं। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (८.१८-२०) में भी हुई है।

सृजनात्मक शक्ति के सक्रिय अवस्था में आने के पूर्व भगवान् का अस्तित्व था। भगवान् भौतिक शक्ति से उत्पन्न नहीं हुए हैं। उनका शरीर पूर्ण रूप से आध्यात्मिक है और उनके शरीर तथा उनमें कोई अन्तर नहीं है। सृष्टि के पूर्व भगवान् अपने परम धाम में रहते थे, जो परम पूर्ण और अद्वितीय है।

स एव भूयो निजवीर्यचोदितां  
स्वजीवमायां प्रकृतिं सिसृक्षतीम् ।  
अनामरूपात्मनि रूपनामनी  
विधित्समानोऽनुससार शास्त्रकृत् ॥ २२ ॥

### शब्दार्थ

सः—वे; एव—इस प्रकार; भूयः—फिर से; निज—अपना; वीर्य—पराक्रम; चोदिताम्—सम्पन्नता का; स्व—अपना; जीव—जीव; मायाम्—बाह्य शक्ति; प्रकृतिम्—भौतिक प्रकृति को; सिसृक्षतीम्—पुनः सृष्टि करते समय; अनाम—बिना उपाधि के; रूप-आत्मनि—आत्मा के स्वरूप; रूप-नामनी—रूप तथा नाम; विधित्समानः—प्रदान करने की इच्छा करते; अनुससार—हस्तान्तरित कर दिया; शास्त्र-कृत्—शास्त्रों के संग्राहक।

तब भगवान् ने अपने अंशस्वरूप जीवों को, नाम तथा रूप प्रदान करने की इच्छा से, उन्हें भौतिक प्रकृति के मार्गदर्शन के अन्तर्गत कर दिया। उनकी ही अपनी शक्ति से भौतिक प्रकृति को पुनः सृष्टि करने के लिए अधिकृत कर दिया गया है।

तात्पर्य : सारे जीव भगवान् के अंश हैं। वे दो प्रकार के हैं—*नित्य मुक्त* तथा *नित्य बद्ध*। *नित्य मुक्त* शाश्वत रूप से मुक्त जीव हैं और वे भगवान् के दिव्य धाम में, जो दृश्य जगत से परे है, दिव्य प्रेममयी सेवा के आदान-प्रदान में नित्य निमग्न रहते हैं। लेकिन *नित्य बद्ध* अर्थात् शाश्वत रूप से बद्धजीवों का जिम्मा बहिरंगा शक्ति, *माया* पर रहता है कि वह परम पिता के प्रति उनकी विद्रोहात्मक मनोवृत्ति को सुधारे। *नित्य बद्ध* यह सदैव भूले रहते हैं कि भगवान् के साथ उनका सम्बन्ध उनके अंश के रूप में है। वे माया द्वारा पदार्थ के उत्पादों के रूप में मोहग्रस्त रहते हैं और इस तरह वे सुखी बनने के लिए भौतिक जगत में नाना प्रकार की योजनाएँ बनाते रहते हैं। वे इन योजनाओं को खुशी-खुशी आगे बढ़ाते हैं, लेकिन भगवान् की इच्छा से योजना बनानेवाले तथा उनकी योजनाएँ कुछ काल बाद ध्वस्त हो जाती हैं—जैसाकि पहले कहा जा चुका है। *भगवद्गीता* (९.७) में इसकी पुष्टि इस प्रकार हुई है, “हे कुन्ती-पुत्र! कल्प के अन्त में सारे जीव मेरी प्रकृति में लीन हो जाते हैं और जब पुनः सृष्टि करने का समय आता है, तो मैं अपनी बहिरंगा शक्ति से सृष्टि प्रारम्भ करता हूँ।”

भूयः शब्द पुनः पुनः का सूचक है अर्थात् यह बताता है कि सृष्टि, पालन तथा संहार की क्रिया भगवान् की बहिरंगा शक्ति से अनवरत चलती रहती है। वे ही सबके कारण हैं। लेकिन सारे जीव, जो स्वाभाविक रूप से भगवान् के अंश हैं और मधुर सम्बन्ध को भुलाये रहते हैं, उन्हें बहिरंगा शक्ति के चंगुल से छूटने का अवसर पुनः प्रदान किया जाता है। और जीव की चेतना को पुर्नजागृत करने के लिए, शास्त्रों की सृष्टि भी भगवान् ही करते हैं। बद्धजीव के लिए वैदिक वाङ्मय दिशा निर्देश करनेवाला है, जिससे वे भौतिक जगत तथा भौतिक शरीर की सृष्टि तथा संहार के पुनरावर्तन से मुक्त हो सकें।

भगवद्गीता में भगवान् कहते हैं, “यह उत्पन्न हुआ जगत तथा भौतिक शक्ति मेरे वश में हैं। प्रकृति के प्रभाव से, वे स्वतः बार-बार उत्पन्न होते हैं और यह सब मेरे द्वारा मेरी बहिरंगा शक्ति के माध्यम से किया जाता है।”

वस्तुतः आध्यात्मिक स्फुलिंग-रूपी जीवों का कोई नाम या रूप नहीं होता। लेकिन भौतिक रूपों तथा नामों की भौतिक शक्ति पर प्रभुत्व जताने की इच्छा-पूर्ति के लिए, उन्हें ऐसे झूठे भोग का अवसर प्रदान किया जाता है और उसी के साथ ही साथ उन्हें शास्त्रों के माध्यम से वास्तविक स्थिति को समझने का अवसर दिया जाता है। मूर्ख तथा भुलकड़ जीव सदैव झूठे रूपों तथा झूठे नामों में व्यस्त रहता है। आधुनिक राष्ट्रवाद ऐसे झूठे नामों तथा झूठे रूपों की चरम परिणति है। मनुष्य झूठे नाम और मिथ्या रूप के पीछे पागल बने रहते हैं। किन्हीं परिस्थितियों में प्राप्त शरीर के रूप को वास्तविक मान लिया जाता है और इस प्रकार से प्राप्त नाम भी अनेक “वादों” के नाम पर शक्ति का दुरुपयोग करने में बद्धजीवों को मोहित करता है। तथापि शास्त्र वास्तविक स्थिति को समझने के लिए संकेत प्रदान करते हैं, किन्तु लोग विभिन्न देश-काल के लिए भगवान् द्वारा निर्मित शास्त्रों से शिक्षा ग्रहण करते हुए कतराते हैं। उदाहरणार्थ, भगवद्गीता प्रत्येक मानव के लिए पथप्रदर्शिका है, लेकिन भौतिक शक्ति के जादू से वे भगवद्गीता द्वारा बताई गई जीवन-शैली को नहीं अपनाते। जिसने भगवद्गीता के सिद्धान्तों को पूरी तरह समझ लिया है, उसके लिए श्रीमद्भागवत स्नातकोत्तर अध्ययन का विषय है। दुर्भाग्यवश लोगों में उसके लिए रुचि नहीं है, अतएव वे माया के चंगुल में फँसकर बारम्बार जन्म-मृत्यु के चक्र में आ जाते हैं।

स वा अयं यत्पदमत्र सूरयो  
जितेन्द्रिया निर्जितमातरिश्वनः ।  
पश्यन्ति भक्त्युत्कलितामलात्मना  
नन्वेष सत्त्वं परिमार्ष्टुमर्हति ॥ २३ ॥

### शब्दार्थ

सः—वह; वै—भगवत्कृपा द्वारा; अयम्—यह; यत्—जो; पदम् अत्र—यहाँ वही भगवान् श्रीकृष्ण हैं; सूरयः—बड़े-बड़े भक्त-गण; जित-इन्द्रियाः—जिन्होंने इन्द्रियों के प्रभाव को जीत लिया है; निर्जित—पूर्ण रूप से संयमित; मातरिश्वनः—



जीवन; पश्यन्ति—देख सकते हैं; भक्ति—भक्तिमय सेवा से; उत्कलित—विकसित; अमल-आत्मना—जिनके मन पूरी तरह विमल हैं उनका; ननु एषः—निश्चित रूप से इसी के द्वारा; सत्त्वम्—जगत, अस्तित्व; परिमार्ष्टुम्—मन को पूरी तरह स्वच्छ करने के लिए; अर्हति—के योग्य है।

ये वे ही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, जिनके दिव्य रूप का अनुभव बड़े-बड़े भक्तों द्वारा किया जाता है, जिन्होंने सुदृढ़ भक्ति द्वारा तथा जीवन एवं इन्द्रियों पर पूर्ण संयम द्वारा, भौतिक चेतना से पूर्ण रूप से विशुद्ध हो चुके हैं। तथा अस्तित्व को विमल बनाने का यही एकमात्र मार्ग है।

तात्पर्य : जैसा कि *भगवद्गीता* में कहा गया है, भगवान् केवल भक्तिमय सेवा द्वारा अपने वास्तविक रूप में जाने जा सकते हैं। अतएव यहाँ पर बताया गया है कि केवल महान् भगवद्भक्त, जो कठिन भक्तिमय सेवा द्वारा मन के सारे भौतिक मैल को धो सकते हैं, वे ही भगवान् को यथारूप अनुभव कर सकते हैं। *जितेन्द्रिय* का अर्थ है, इन्द्रियों पर पूरा नियन्त्रण रखने वाला। इन्द्रियाँ शरीर की सक्रिय अंग हैं और उनके कार्यों को रोक पाना सम्भव नहीं। इन्द्रियों को निष्क्रिय बनाने के लिए योग के कृत्रिम साधन सर्वथा निष्फल सिद्ध हुए हैं, यहाँ तक कि विश्वामित्र मुनि जैसे महान् *योगी* सरीखे के प्रसंग में भी। विश्वामित्र मुनि ने यौगिक समाधि के द्वारा इन्द्रियों को वश में कर रखा था, किन्तु जब उनकी भेंट मेनका (स्वर्ग की अप्सरा) से हो गई, तो वे काम के शिकार हो गये और इन्द्रियों को वश में करने की उनकी कृत्रिम विधि विफल हो गई। लेकिन शुद्ध भक्त के किस्से में ऐसा नहीं होता कि कृत्रिम साधन से इन्द्रियों को कार्य करने से रोका जाय, अपितु उन्हें अन्य अच्छे कार्यों में व्यस्त रखा जाता है। जब इन्द्रियाँ अधिक आकर्षक कार्यों में लग जाती हैं, तो किन्हीं निकृष्ट कार्यों के प्रति उनके उन्मुख होने की सम्भावना नहीं रह जाती। *भगवद्गीता* में कहा गया है कि *इन्द्रियों को अच्छे कार्यों में लगाने के ही द्वारा ही वश में रखा जा सकता है।* भक्ति की अनिवार्यता है कि इन्द्रियों को विमल किया जाय या भक्तिमय सेवा में लगाया जाय। भक्ति का अर्थ निष्क्रियता नहीं है। भगवान् की सेवा में जो कुछ भी किया जाता है, वह उनकी भौतिक प्रकृति से तुरन्त ही पवित्र हो जाता है। भौतिक धारणा अज्ञान के कारण ही है। वासुदेव के परे कुछ भी नहीं है। ग्रहणशील इन्द्रियों के दीर्घकालीन अभ्यास से ही विद्वान के हृदय में धीरे-धीरे वासुदेव अनुभूति जागृत होती है। लेकिन 'वासुदेव ही

सब कुछ हैं' ऐसा स्वीकार करने के ज्ञान में ही इस विधि का समापन होता है। भक्तिमय सेवा में यही विधि शुरूआत से स्वीकार की जाती है और भगत्वकृपा से अन्तःकरण में भगवान् के आदेश से, सारा वास्तविक ज्ञान प्रकट हो जाता है। अतएव भक्तिमय सेवा द्वारा इन्द्रियों को वश में करना एकमात्र सरलतम साधन है।

स वा अयं सख्यनुगीतसत्कथो  
वेदेषु गुह्येषु च गुह्यवादिभिः ।  
य एक ईशो जगदात्मलीलया  
सृजत्यवत्यत्ति न तत्र सज्जते ॥ २४ ॥

### शब्दार्थ

सः—वे; वै—भी; अयम्—यह; सखि—हे सखी; अनुगीत—वर्णित; सत्-कथः—श्रेष्ठ लीलाएँ; वेदेषु—वेदों में; गुह्येषु—गोपनीय रीति से; च—भी; गुह्य-वादिभिः—गुह्य भक्तों द्वारा; यः—जो; एकः—केवल एक; ईशः—परम नियन्ता; जगत्—सारी सृष्टि के; आत्म—परमात्मा; लीलया—लीलाओं के प्राकट्य द्वारा; सृजति—सृजन करते हैं; अवति अत्ति—पालन करते हैं तथा संहार करते हैं; न—कभी नहीं; तत्र—वहाँ; सज्जते—उसमें आसक्त होते हैं।

हे सखियो, यहाँ पर वही भगवान् हैं, जिनकी आकर्षक तथा गोपनीय लीलाओं का वर्णन बड़े-बड़े भक्तों द्वारा वैदिक साहित्य के गुह्यतम अंशों में हुआ है। वे ही भौतिक जगत की सृष्टि करने वाले, पालने वाले तथा संहार करनेवाले हैं, फिर भी वे उससे अप्रभावित रहते हैं।

तात्पर्य : भगवद्गीता में कहा गया है कि सारा वैदिक साहित्य भगवान् श्रीकृष्ण की महानता का यशोगान करता है। यहाँ पर भागवत में भी इसकी पुष्टि की गई है। वेदों की अनेक शाखाएँ तथा उपशाखाएँ हैं और इसका विस्तार महान भक्तों यथा व्यास, नारद, शुकदेव गोस्वामी, कुमारगण, कपिल, प्रह्लाद, जनक, बलि तथा यमराज जैसे भगवान् के शक्त्यावेश अवतारों द्वारा हुआ है, लेकिन उनकी लीलाओं का गुह्य अंश, गुह्य भक्त शुकदेव गोस्वामी द्वारा श्रीमद्भागवत में विशेष रूप से वर्णित हुआ है। वेदान्त-सूत्र या उपनिषदों में उनकी लीलाओं के गुह्य अंशों का संकेत मात्र हुआ है। ऐसे वैदिक साहित्य में, जैसे कि उपनिषदों में भगवान् के स्वरूप को स्पष्ट रूप से संसारी अवधारणा से पृथक् दिखाया गया है। उनकी पहचान पूर्ण रूप से आध्यात्मिक होने

के कारण उनके रूप, नाम, गुण, साज-समान इत्यादि को विस्तारपूर्वक पदार्थ से पृथक् दिखाया गया है। इसीलिए कभी-कभी अल्प बुद्धिवाले उन्हें निराकार मानने का भ्रम कर बैठते हैं। लेकिन वास्तव में वे परम पुरुष, भगवान् हैं और परमात्मा या निराकार ब्रह्म के रूप में उनकी अभिव्यक्ति केवल आंशिक रूप से ही होती है।

यदा ह्यधर्मेण तमोधियो नृपा  
जीवन्ति तत्रैष हि सत्त्वतः किल ।  
धत्ते भगं सत्यमृतं दयां यशो  
भवाय रूपाणि दधद्युगे युगे ॥ २५ ॥

### शब्दार्थ

यदा—जब-जब; हि—निश्चय ही; अधर्मेण—ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध; तमः-धियः—तमोगुणी पुरुष; नृपाः—राजा तथा प्रशासक; जीवन्ति—पशुओं के समान रहते हैं; तत्र—तत्पश्चात्; एषः—वह; हि—केवल; सत्त्वतः—दिव्य; किल—निश्चय ही; धत्ते—प्रकट होता है; भगम्—परम शक्ति; सत्यम्—सत्य; ऋतम्—सरलता; दयाम्—दया; यशः—अद्भुत कार्यकलाप; भवाय—पालन हेतु; रूपाणि—विभिन्न रूपों में; दधत्—प्रकट; युगे—विभिन्न कालों में; युगे—तथा युगों में।

जब भी राजा तथा प्रशासक, तमोगुण में स्थित पशुओं की तरह रहते हैं, तो भगवान् अपने दिव्य रूप में अपनी परम शक्ति, सत्य ऋत, को प्रकट करते हैं, श्रद्धालुओं पर विशेष दया दिखाते हैं, अद्भुत कार्य करते हैं तथा विभिन्न कालों तथा युगों में आवश्यकतानुसार विभिन्न दिव्य रूप प्रकट करते हैं।

तात्पर्य : जैसाकि ऊपर कहा गया है, दृश्य जगत परमेश्वर की सम्पत्ति है। यह ईशोपनिषद् का मूल दर्शन है—प्रत्येक वस्तु परमेश्वर की सम्पत्ति है। अतएव किसी को उनकी सम्पत्ति पर अतिक्रमण नहीं करना चाहिए। उन्होंने कृपापूर्वक जो कुछ दिया है, उसे ही स्वीकार करना चाहिए। अतएव यह पृथ्वी या कोई भी अन्य ग्रह या ब्रह्माण्ड एक मात्र भगवान् की सम्पत्ति है। सारे जीव निश्चय ही उनके अंश या सन्तानें हैं और इस प्रकार उनमें से हर एक को अपना नियत कार्य करने के लिए उनकी दया पर जीने का अधिकार है। अतएव जब तक किसी को भगवान् से अनुमति प्राप्त न हो, तब तक वह किसी पराये व्यक्ति या पशु के अधिकार पर अतिक्रमण नहीं कर सकता। राजा या प्रशासक भगवान् के इच्छित प्रबन्ध की देख-रेख करने के लिए उनका

प्रतिनिधि होता है। अतएव, उसे महाराज युधिष्ठिर या परीक्षित के समान मान्य व्यक्ति होना चाहिए। ऐसे राजाओं को विश्व पर शासन करने का ज्ञान तथा पूरा-पूरा उत्तरदायित्व प्रामाणिक पुरुषों से प्राप्त होता है। लेकिन समय-समय पर भौतिक प्रकृति के निम्न गुण तमोगुण के प्रभाव से, राजा तथा प्रशासक बिना किसी ज्ञान तथा उत्तरदायित्व के सत्तारूढ हो जाते हैं और ऐसे मूर्ख प्रशासक अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए पशुओं की तरह रहते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि पूरा वातावरण अराजकता तथा विषाक्त तत्त्वों से परिपूरित हो उठता है। मानव समाज में भाई-भतीजावाद, घूस, धोखाधड़ी, मारामारी तथा इसके कारण दुर्भिक्ष, रोग, युद्ध तथा इसी प्रकार के अन्य उद्विग्नकारी तत्त्वों का प्राधान्य हो जाता है। भगवान् के भक्त या श्रद्धालु लोगों को सभी प्रकार से दण्डित किया जाता है। ये सारे लक्षण इस बात के सूचक हैं कि धर्म की स्थापना करने तथा कुशासन का विनाश करने के लिए भगवान् अवतार लेने वाले हैं। *भगवद्गीता* में भी इसकी पुष्टि हुई है।

भगवान् तब भौतिक गुणों से रंचमात्र भी प्रभावित हुए बिना, अपने दिव्य रूप में प्रकट होते हैं। वे अपनी सृष्टि के राज्य को सामान्य अवस्था में रखने के लिए ही अवतरित होते हैं। सामान्य अवस्था यह है कि प्रत्येक ग्रह के निवासियों की सारी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भगवान् द्वारा प्रबन्ध रहता है। वे प्रामाणिक शास्त्रों में वर्णित विधि-विधानों का अनुसरण करते हुए सुखपूर्वक रह सकते हैं और अपने लिए पूर्व-निश्चित कर्म करते हुए अन्त में मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। इस भौतिक जगत की सृष्टि *नित्य बद्ध* जीवों की मनमानी इच्छाओं की पूर्ति के लिए वैसे ही की जाती है, जिस प्रकार कि शरारती लड़कों के हाथ में खिलौने पकड़ा दिये जाते हैं। अन्यथा भौतिक जगत की कोई आवश्यकता न थी। लेकिन जब ये भगवान् की अनुमति के बिना, विज्ञान की शक्ति द्वारा अवैध रूप से संसाधनों का दोहन करने के लिए उन्मत्त हो उठते हैं और वह भी केवल इन्द्रिय-तृप्ति के लिए, तब आततायियों को दण्ड देने तथा श्रद्धालुओं की रक्षा करने के लिए भगवान् को अवतार लेना पड़ता है।

जब वे अवतरित होते हैं, तब वे अपना परम अधिकार जताने के लिए अलौकिक कार्य करते हैं और रावण, हिरण्यकशिपु तथा कंस जैसे भौतिकतावादियों को समुचित रूप से दण्डित करते हैं। वे इस तरह कर्म करते हैं कि कोई उनकी नकल नहीं कर सकता। उदाहरणार्थ, जब राम के रूप में भगवान् प्रकट हुए, तो उन्होंने हिन्द महासागर पर सेतु बाँधा। जब वे कृष्ण के रूप में अवतरित हुए, तो उन्होंने बचपन से ही पूतना, अघासुर, शकटासुर, कालिय और अन्त में अपने मामा कंस का बध करके अलौकिक कृत्यों का प्रदर्शन किया। जब वे द्वारका में थे, तो उन्होंने १६,१०८ रानियों से विवाह किया और उन सबसे प्रचुर संख्या में सन्तानें हुईं। उनके निजी परिवार के सदस्यों की संख्या कुल मिलाकर १ लाख तक पहुँच गई, और वे यदु-वंश के नाम से प्रसिद्ध हुए। पुनः उन्होंने अपने जीवन-काल में ही, उन सबका विनाश भी कर दिया। वे गोवर्धनधारी हरि के नाम से प्रसिद्ध हैं, क्योंकि सात वर्ष की अल्प आयु में ही, उन्होंने गोवर्धन नामक पर्वत उठा लिया था। उन्होंने उस काल के अनेक अवांछित राजाओं का वध किया और क्षत्रिय के रूप में उन्होंने वीरतापूर्वक युद्ध किया। वे *असमौर्ध्व*, जिसका अर्थ है, अर्थात् अद्वितीय के नाम से प्रसिद्ध हैं। कोई न तो उनके समान है और न उनसे बढ़कर है।

अहो अलं श्लाघ्यतमं यदोः कुल-  
महो अलं पुण्यतमं मधोर्वनम् ।  
यदेष पुंसामृषभः श्रियः पतिः  
स्वजन्मना चङ्क्रमणेन चाञ्चति ॥ २६ ॥

### शब्दार्थ

अहो—ओह; अलम्—सचमुच; श्लाघ्य-तमम्—सर्वाधिक यशस्वी; यदोः—यदु राजा के; कुलम्—वंश; अहो—ओह;  
अलम्—सचमुच; पुण्य-तमम्—अत्यन्त पुण्यात्मा; मधोः वनम्—मथुरा की भूमि; यत्—क्योंकि; एषः—यह; पुंसाम्—  
समस्त जीवों का; ऋषभः—परम नायक; श्रियः—लक्ष्मी के; पतिः—पति; स्व-जन्मना—अपने आविर्भाव से;  
चङ्क्रमणेन—विचरण द्वारा; च अञ्चति—महिमा।

ओह, यदुवंश कितना यशस्वी है और मथुरा की भूमि कितनी पुण्यमयी है, जहाँ समस्त जीवों के परम नायक, लक्ष्मीपति ने जन्म लिया और अपने बचपन में विचरण किया है।

**तात्पर्य :** *भगवद्गीता* में भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने दिव्य प्रादुर्भाव, तिरोधान तथा लीलाओं का विशद वर्णन किया है। भगवान् अपनी अकल्पनीय शक्ति से किसी परिवार या स्थान विशेष में प्रकट होते हैं। वे बद्धजीव की भाँति जन्म लेकर एक शरीर को त्याग कर दूसरा शरीर धारण नहीं करते। उनका जन्म सूर्योदय तथा सूर्यास्त की भाँति होता है। सूर्य पूर्वी-क्षितिज में उदय होता है, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं होता कि पूर्वी क्षितिज उसका जनक है। सौरमण्डल के प्रत्येक भाग में सूर्य का अस्तित्व रहता है, किन्तु वह एक निश्चित समय पर दृष्टिगोचर होता है और फिर उसी तरह किसी अन्य निश्चित समय पर अस्त हो जाता है। इसी तरह भगवान् इस ब्रह्माण्ड में सूर्य की भाँति प्रकट होकर फिर हमारी दृष्टि से ओझल हो जाते हैं। वे हर समय, हर स्थान पर विद्यमान रहते हैं, लेकिन जब वे अपनी अहैतुकी कृपावश हमारे समक्ष प्रकट होते हैं, तो हम मान बैठते हैं कि उन्होंने जन्म लिया है। जो कोई इस सत्य को शास्त्रों के कथनानुसार समझ लेता है, वह वर्तमान शरीर त्याग करते ही मुक्त हो जाता है। मोक्ष अनेक जन्मों के बाद और वह भी धैर्य और लगन एवं ज्ञान तथा वैराग्य में रहते हुए गहन प्रयास के बाद प्राप्त होता है। लेकिन यदि कोई भगवान् के दिव्य जन्म तथा कर्म के मर्म को सचमुच समझ लेता है, तो वह तुरन्त मोक्ष पा लेता है। यह *भगवद्गीता* का निर्णय है। लेकिन जो अविद्या के अन्धकार में हैं, वे यह मान बैठते हैं कि भगवान् के जन्म तथा कर्म भौतिक जगत में एक सामान्य व्यक्ति जैसे होते हैं। ऐसे अपूर्ण निष्कर्ष से किसी को भी मोक्ष नहीं मिल सकता। अतएव यदुवंश में राजा वसुदेव के पुत्र के रूप में उनका जन्म और मथुरा भूमि में नंद महाराज के परिवार में उनका भेजा जाना—ये सब भगवान् की अन्तरंगा शक्ति की दिव्य योजनाएँ हैं। यदुवंश तथा मथुरावासियों के सौभाग्य का अनुमान भौतिक दृष्टि से नहीं लगाया जा सकता। यदि भगवान् के जन्म तथा कर्म की दिव्य प्रकृति को जान लेने मात्र से सरलता से मोक्ष मिल सकता है, तो फिर जिन लोगों ने उनके पारिवारिक सदस्य के रूप में, या पड़ोसी रूप में, भगवान् की संगति का वास्तविक भोग किया है, उनके भाग्य का क्या कहना? जिन लोगों को लक्ष्मीपति भगवान् के सान्निध्य का सुअवसर प्राप्त हुआ, उन्हें तो

निश्चित रूप से मुक्ति से बढ़कर उपलब्धि हुई होगी। अतएव सचमुच ही, भगवान् की कृपा से उनका वंश तथा उनकी भूमि, दोनों ही सदैव यशस्वी हैं।

अहो बत स्वर्यशसस्तिरस्करी  
कुशस्थली पुण्ययशस्करी भुवः ।  
पश्यन्ति नित्यं यदनुग्रहेषितं  
स्मितावलोकं स्वपतिं स्म यत्प्रजाः ॥ २७ ॥

### शब्दार्थ

अहो बत—यह कितना आश्चर्यजनक है; स्वः-यशसः—स्वर्ग की महिमा; तिरस्करी—पराजित करनेवाली; कुशस्थली—द्वारका; पुण्य—शुभकर्म; यशस्करी—प्रसिद्ध; भुवः—पृथ्वीलोक; पश्यन्ति—देखते हैं; नित्यम्—निरन्तर; यत्—जो; अनुग्रह-इषितम्—वर देने के लिए; स्मित-अवलोकम्—मृदु मुसकान भरी चितवन; स्व-पतिम्—जीवों के आत्मा (कृष्ण) को; स्म—करते थे; यत्-प्रजाः—उस स्थान के निवासी।

निस्सन्देह, यह कितना आश्चर्यजनक है कि द्वारका ने स्वर्ग के यश को पिछाड़ कर पृथ्वी की प्रसिद्धि को बढ़ाया है। द्वारका के निवासी उनके प्रिय स्वरूप में समस्त जीवों के आत्मा (कृष्ण) का सदैव दर्शन करते हैं। भगवान् उन पर दृष्टिपात करते हैं और अपनी मुसकान भरी चितवन से उन्हें कृतार्थ करते हैं।

तात्पर्य : स्वर्ग में इन्द्र, चन्द्र, वरुण तथा वायु जैसे देवता निवास करते हैं और पुण्यात्माएँ वहाँ तभी पहुँचते हैं, जब पृथ्वी पर वे अनेक पुण्यकर्म करते हैं। आधुनिक विज्ञानी स्वीकार करते हैं कि उच्चलोकों में काल की व्यवस्था पृथ्वी से भिन्न है। इस प्रकार प्रामाणिक शास्त्रों से यह पता चलता है कि वहाँ पर आयु (हमारी गणना के अनुसार) दस हजार वर्ष है। पृथ्वी के छह मास, स्वर्ग के एक दिन के बराबर होते हैं। इसी प्रकार भोग की सुविधाएँ भी अधिक हैं और वहाँ के निवासियों की सुन्दरता अतिशय है। पृथ्वी के सामान्य लोग स्वर्ग पहुँचने के लिए अत्यन्त इच्छुक रहते हैं, क्योंकि उन्होंने सुन रखा है कि पृथ्वी की अपेक्षा वहाँ जीव को अधिक सुविधाएँ प्राप्त होती हैं। अब वे अन्तरिक्ष यान द्वारा चन्द्रमा पर पहुँचने का प्रयास कर रहे हैं। इन सब बातों पर विचार करते हुए पृथ्वी की अपेक्षा स्वर्ग अधिक प्रसिद्ध है। लेकिन द्वारका के कारण पृथ्वी की प्रसिद्धि ने स्वर्ग को पीछे छोड़ दिया है, क्योंकि यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण ने राजा के रूप में राज्य

किया। इस पृथ्वी के तीन स्थान—वृन्दावन, मथुरा तथा द्वारका—ब्रह्माण्ड के प्रसिद्ध लोकों से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। ये तीनों स्थान इसीलिए निरन्तर पवित्र हैं, क्योंकि जब भी भगवान् अवतरित होते हैं, तो वे विशेषकर इन्हीं तीन स्थानों में अपनी दिव्य लीलाओं का प्रदर्शन करते हैं। ये निरन्तर भगवान् के पवित्र स्थल हैं और आज भी भगवान् के यहाँ दृष्टिगोचर न होने पर भी भक्तगण इन पवित्र स्थानों का लाभ उठाते हैं। भगवान् सभी जीवों के आत्मा हैं और वे चाहते हैं कि सारे जीव अपने स्वरूप में रहकर, उनके सान्निध्य में दिव्य जीवन में भाग लेते रहें। उनका आकर्षक रूप तथा उनकी मधुर मुसकान प्रत्येक के हृदय में घर करने वाली है और एक बार ऐसा हो जाने पर जीव भगवान् के धाम में प्रवेश पा जाता है, जहाँ से कोई भी लौटता नहीं। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* में हुई है।

भले ही स्वर्ग के ग्रह भौतिक भोग की अच्छी सुविधाएँ देने के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध क्यों न हों, लेकिन *भगवद्गीता* (९.२०-२१) से हम जान पाते हैं कि ज्योंही संचित पुण्य क्षीण हो जाते हैं, त्योंही मनुष्य को पृथ्वी पर पुनः आना पड़ता है। द्वारका स्वर्गलोक से इसलिए अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि जिस किसी को भी भगवान् की स्मित चितवन की प्राप्ति हुई है, उसे इस सड़ी-गली पृथ्वी पर फिर से नहीं आना पड़ता—जिसे भगवान् ने भी जिसे दुख का स्थान बताया है। न केवल यह पृथ्वी, अपितु ब्रह्माण्ड के सारे लोक दुख के स्थान हैं, क्योंकि ब्रह्माण्ड के किसी भी लोक में न तो शाश्वत जीवन है, न शाश्वत आनन्द और न शाश्वत ज्ञान है। जो व्यक्ति भगवान् की भक्तिमय सेवा में लीन रहता है, उसके लिए उपर्युक्त तीनों स्थानों—द्वारका, मथुरा या वृन्दावन—में से किसी एक में रहने की संस्तुति की जाती है। चूँकि इन तीनों स्थानों में भक्ति का प्रवर्द्धन होता है, अतएव जो लोग शास्त्रों की बताई विधि से नियमों का पालन करने के लिए वहाँ जाते हैं, उन्हें वैसा ही फल मिलता है, जैसा भगवान् श्रीकृष्ण के उपस्थित रहने पर मिलता था। उनका धाम तथा स्वयं वे अभिन्न हैं और आज भी कोई शुद्ध भक्त किसी अन्य अनुभवी भक्त के निर्देशन में सारे फल प्राप्त कर सकता है।



नूनं व्रतस्नानहुतादिनेश्वरः  
 समर्चितो ह्यस्य गृहीतपाणिभिः ।  
 पिबन्ति याः सख्यधरामृतं मुहु-  
 ब्रजस्त्रियः सम्मुमुहुर्यदाशयाः ॥ २८ ॥

### शब्दार्थ

नूनम्—निश्चय ही पूर्व जन्म में; व्रत—अनुष्ठान, व्रत; स्नान—स्नान; हुत—अग्नि में आहुति; आदिना—आदि द्वारा; ईश्वरः—भगवान्; समर्चितः—पूरी तरह से पूजित; हि—निश्चय ही; अस्य—उनका; गृहीत-पाणिभिः—विवाहिता स्त्रियों द्वारा; पिबन्ति—स्वाद लेते हैं; याः—जो; सखि—हे सखी; अधर-अमृतम्—उनके होंठों का अमृत; मुहुः—पुनः पुनः; ब्रज-स्त्रियः—ब्रजभूमि की बालाएँ; सम्मुमुहुः—बहुधा मूर्छित हो जाती थीं; यत्-आशयाः—इस प्रकार से अनुग्रह की आशा करते हुए।

हे सखियो, तनिक उनकी पत्नियों के विषय में सोचो, जिनके साथ उनका पाणिग्रहण हुआ था। उन्होंने कैसा व्रत, स्नान, यज्ञ तथा ब्रह्माण्ड के स्वामी की सम्यक् पूजा की होगी, जिससे वे सब उनके अधरामृत का निरन्तर आस्वादन ( चुम्बन द्वारा ) कर रही हैं? ब्रजभूमि की बालाएँ ऐसी कृपा की कल्पना से ही प्रायः मूर्छित हो जाती होंगी।

तात्पर्य : शास्त्रों में दिये गये धार्मिक अनुष्ठान बद्धजीवों को सांसारिक गुणों से परिशुद्ध करने के निमित्त हैं, जिससे वे धीरे-धीरे परमेश्वर की दिव्य सेवा करने का अवसर पाने की अवस्था तक ऊपर उठ सकें। शुद्ध आध्यात्मिक जीवन की इस अवस्था को प्राप्त करना सर्वोच्च सिद्धि है और यह अवस्था जीवात्मा की वास्तविक पहचान अथवा स्वरूप कहलाती है। मुक्ति का अर्थ है, इस स्वरूप अवस्था का नवीकरण। स्वरूप की उस पूर्णावस्था में जीव प्रेमाभक्ति की पाँच अवस्थाओं में स्थापित होता है, जिनमें से एक अवस्था माधुर्य रस अथवा युगल प्रेम की मनोदशा भी है। भगवान् सदैव अपने में पूर्ण होते हैं, अतएव उन्हें अपने लिए किसी प्रकार की लालसा नहीं रहती। किन्तु अपने भक्त के प्रगाढ़ प्रेम की पूर्ति के लिए वे स्वामी, सखा, पुत्र या पति बनते रहते हैं। यहाँ पर माधुर्य रस के दो प्रकार के भक्तों का उल्लेख हुआ है। एक है स्वकीय तथा दूसरा है परकीय। दोनों ही सम्बन्ध भगवान् कृष्ण के साथ माधुर्य रस के होते हैं। द्वारका की रानियाँ स्वकीया थीं, अर्थात् वे विधिवत रूप से ब्याही हुई थीं, लेकिन ब्रज की बालाएँ उनकी तब की तरुण मित्र थीं, जब वे अनब्याहे थे। भगवान् सोलह वर्ष की उम्र तक वृन्दावन में रहे और पास-पड़ोस की लड़कियों के साथ उनका मैत्री भाव परकीय था। इन बालिकाओं तथा रानियों को

शास्त्रोक्त व्रत, स्नान तथा अग्नि यज्ञ द्वारा कठिन तपस्याएँ करनी पड़ें। लेकिन ये सब अनुष्ठान अपने आप में परिपूर्ण नहीं हैं, न सकाम कर्म और ज्ञान का अनुशीलन या योग की सिद्धि ही अपने में पूर्ण हैं। ये सब स्वरूप की सर्वोच्च अवस्था को प्राप्त करने के निमित्त हैं, भगवान् की वैधानिक दिव्य सेवा करने के लिए हैं। प्रत्येक व्यक्ति को इन पाँच अवस्थाओं में से किसी एक से भगवान् से सम्बन्ध स्थापित करना होता है और शुद्ध आध्यात्मिक स्वरूप होने पर यह सम्बन्ध किसी सांसारिक आकर्षण के बिना प्रकट होता है। उनकी पत्नियों द्वारा या भगवान् को प्रेमी रूप में चाहनेवाली तरुणी गोपियों द्वारा कृष्ण का चुम्बन लेना कोई विकृत संसारी गुण नहीं है। यदि ऐसा ही होता तो शुकदेव जैसे मुक्तात्मा ने उनका आस्वाद करने का कष्ट न उठाया होता, न ही भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु गृहस्थ जीवन त्याग करने के पश्चात् इन विषयों के प्रति आकृष्ट हुए होते। यह अवस्था कई जन्मों तक तपस्या करने के बाद प्राप्त होती है।

या वीर्यशुल्केन हताः स्वयंवरे  
 प्रमथ्य चैद्यप्रमुखान् हि शुष्मिणः ।  
 प्रद्युम्नसाम्बाम्बसुतादयोऽपरा  
 याश्चाहता भौमवधे सहस्रशः ॥ २९ ॥

### शब्दार्थ

या—स्त्री; वीर्य—पराक्रम; शुल्केन—मूल्य चुकता करने से; हताः—बलपूर्वक ले जाई गई; स्वयंवरे—स्वयंवर में;  
 प्रमथ्य—मान-मर्दन करके; चैद्य—राजा शिशुपाल; प्रमुखान्—इत्यादि; हि—निश्चय ही; शुष्मिणः—सभी अत्यन्त  
 शक्तिशाली; प्रद्युम्न—प्रद्युम्न ( कृष्ण का पुत्र ); साम्ब—साम्ब; अम्ब—अम्ब; सुत-आदयः—सन्तानें; अपराः—अन्य  
 स्त्रियाँ; याः—जो; च—भी; आहताः—इसी प्रकार ले जाई गई; भौम-वधे—राजाओं का वध करने के बाद;  
 सहस्रशः—हजारों।

इन पत्नियों से सन्तानें हैं—प्रद्युम्न, साम्ब, अम्ब इत्यादि। उन्होंने शिशुपाल के नायकत्व में आए हुए अनेक शक्तिशाली राजाओं को हरा कर रुक्मिणी, सत्यभामा तथा जाम्बवती जैसी स्त्रियों का उनके स्वयंवर-समारोहों से बलपूर्वक अपहरण किया था। उन्होंने भौमासुर तथा उसके हजारों सहायकों का वध करके अन्य स्त्रियों का भी अपहरण किया था। ये सारी स्त्रियाँ धन्य हैं।

**तात्पर्य :** शक्तिशाली राजाओं की अत्यधिक सुयोग्य कन्याओं को खुली स्पर्धा में अपना पति चुनने की अनुमति दी जाती थी और ऐसे समारोह *स्वयंवर* कहलाते थे। चूँकि स्वयंवर में प्रतियोगी वीर राजकुमारों के मध्य खुली स्पर्धा होती थी, अतएव उन्हें राजकुमारी के पिता आमन्त्रित करते थे और बहुधा आमन्त्रित राजकुमारों में खेल-खेल में नियमित युद्ध हुआ करता था। लेकिन कभी-कभी ऐसे विवाह-द्वन्द्वों में योद्धा राजकुमार की मृत्यु हो जाती तो विजयी राजकुमार को वह राजकुमारी प्रदान की जाती थी, जिसके लिए कई राजकुमारों के जीवन बलिदान हो चुके होते थे। भगवान् कृष्ण की पटरानी रुक्मिणी विदर्भ के राजा की कन्या थी, जिसकी इच्छा थी कि उसकी सुयोग्य तथा सुन्दर कन्या भगवान् कृष्ण को दी जाय। लेकिन रुक्मिणी का सबसे बड़ा भाई चाहता था कि वह राजा शिशुपाल को दी जाय, जो कृष्ण का ममेरा भाई था। फलतः एक खुली स्पर्धा हुई और सदा की तरह भगवान् अपने अद्वितीय पराक्रम से शिशुपाल तथा अन्य राजाओं का मान-मर्दन करके विजयी हुए। रुक्मिणी के प्रद्युम्न जैसे दस पुत्र हुए। भगवान् कृष्ण ने इसी तरह अन्य रानियों का भी अपहरण किया था। दशम स्कंध में भगवान् कृष्ण द्वारा इस तरह के अनुपम अपहरण का विशद वर्णन मिलेगा। ऐसी कुल मिलाकर १६,१०० सुन्दर बालएं थीं, जो अनेक राजाओं की पुत्रियां थीं, भौमासुर द्वारा उन्हें अपहृत करके, अपनी कामपिपासा के लिए बन्दी बनाकर रखा गया था। इन सुन्दरियों ने कृष्ण से अत्यन्त करुण स्वर में अपने उद्धार की प्रार्थना की थी और कृपा के सागर भगवान् ने भौमासुर से युद्ध करके तथा उसे मारकर उन्हें मुक्त किया था। फिर बन्दी बनाई गई इन राजकुमारियों को भगवान् ने अपनी पत्नियों के रूप में स्वीकार किया था, यद्यपि समाज की दृष्टि में, ये सारी लड़कियां पतित हो चुकी थीं। लेकिन सर्वशक्तिमान भगवान् कृष्ण ने इनकी प्रार्थना सुनी और रानियों जैसा सम्मान देते हुए उनसे विवाह किया। इस प्रकार द्वारका में भगवान् कृष्ण की १६,१०८ रानियाँ थीं और प्रत्येक से दस-दस सन्तानें प्राप्त हुईं। ये सभी संतानें बड़ी हुईं और हर एक के उतने ही बच्चे हुए, जितने उनके पिता के थे। इस तरह कुल मिलाकर उनके परिवार की लाखों की संख्या थी।

एताः परं स्त्रीत्वमपास्तपेशलं  
 निरस्तशौचं बत साधु कुर्वते ।  
 यासां गृहात्पुष्करलोचनः पति-  
 न जात्वपैत्याहृतिभिर्हृदि स्पृशन् ॥ ३० ॥

### शब्दार्थ

एताः—ये सब स्त्रियाँ; परम्—सर्वोच्च; स्त्रीत्वम्—स्त्रीत्व; अपास्तपेशलम्—बिना व्यक्तित्व के; निरस्त—विहीन;  
 शौचम्—शुद्धि; बत साधु—धन्य हैं; कुर्वते—करते हैं; यासाम्—जिनके; गृहात्—घर से; पुष्कर-लोचनः—कमल  
 नेत्रोंवाले; पतिः—पति; न जातु—कभी भी नहीं; अपैति—जाता है; आहृतिभिः—भेंट द्वारा; हृदि—हृदय में; स्पृशन्—  
 प्रिय ।

इन सारी स्त्रियों ने व्यक्तित्व तथा शुद्धि से विहीन होते हुए भी, अपने जीवन को धन्य किया। उनके पति कमलनयन भगवान् ने उन्हें घर में कभी अकेले नहीं छोड़ा। वे उन्हें बहुमूल्य भेंट प्रदान करके उनके हृदयों को प्रसन्न बनाते रहे।

तात्पर्य : भगवद्भक्त परिशुद्ध हो चुके जीव होते हैं। ज्योंही भक्त भगवान् के चरणकमलों की शरण में सच्चे हृदय से आ जाते हैं, भगवान् उन्हें स्वीकार कर लेते हैं और भक्त सारे भौतिक कल्मषों से रहित हो जाते हैं। ऐसे भक्त प्रकृति के तीनों गुणों से ऊपर होते हैं। भक्त के लिए कोई शारीरिक अयोग्यता नहीं होती, जिस प्रकार गंगा जल में गंदे नाले का जल मिल जाने पर उसमें कोई गुणात्मक अन्तर नहीं रह जाता। स्त्रियाँ, वैश्य तथा शूद्र अधिक बुद्धिमान नहीं होते, अतएव उनके लिए ईश्वर-तत्त्व को समझ पाना या भगवान् की भक्तिमय सेवा में लग पाना कठिन होता है। वे अधिक भौतिकतावादी होते हैं और इनसे भी कम किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुलकश, आभीर, कंक, यवन, खस इत्यादि होते हैं, किन्तु यदि वे सब ठीक से भगवद्भक्ति में लग जाँय तो उन सबका उद्धार हो सकता है। भगवान् की सेवा में लगने पर उपाधियों की अपात्रता हट जाती है और वे शुद्ध आत्माओं के रूप में भगवद्धाम में प्रवेश करने के अधिकारी बन जाते हैं।

भौमासुर के चंगुल में फँसी बालाओं ने अपने उद्धार के लिए निष्ठापूर्वक भगवान् श्रीकृष्ण की प्रार्थना की थी और अपनी इस भक्ति और निष्ठा से वे तुरन्त शुद्ध बन गईं। अतएव भगवान् ने इन्हें पत्नी-रूप में स्वीकार किया और उनके जीवन धन्य हो गये। उनका मान तब और भी बढ़ गया जब भगवान् ने उनके अत्यन्त समर्पित पति के रूप में भूमिका निभाई।

भगवान् अपनी १६,१०८ पत्नियों के साथ अनवरत रहते चले आए थे। उन्होंने अपने आपको १६,१०८ पूर्णांशों में विस्तारित किया और इनमें से प्रत्येक भगवान् थे जो आदि पुरुष से तनिक भी भिन्न न थे। श्रुतिमन्त्र पुष्टि करते हैं कि भगवान् अपना विस्तार अनेक में कर सकते हैं। इतनी सारी पत्नियों के पति रूप में, वे उन सबको मँहगी से मँहगी भेंट देकर प्रसन्न करते रहे। वे स्वर्ग से पारिजात वृक्ष ले आये और उसे अपनी प्रमुख रानीयों में से एक ऐसी सत्यभामा के महल में लगाया। अतएव यदि कोई चाहता है कि कृष्ण उसके पति बनें, तो भगवान् ऐसी इच्छाएँ पूर्णरूपेण पूरी करते हैं।

एवंविधा गदन्तीनां स गिरः पुरयोषिताम् ।  
निरीक्षणेनाभिनन्दन् सस्मितेन ययौ हरिः ॥ ३१ ॥

### शब्दार्थ

एवंविधा:—इस प्रकार; गदन्तीनाम्—उनके विषय में बातें करती तथा प्रार्थना करती; सः—वे ( भगवान् ); गिरः—वाणी का; पुर-योषिताम्—राजधानी की स्त्रियों के; निरीक्षणं—उन्हें देखने से; अभिनन्दन्—तथा उनका स्वागत करने; स-स्मितेन—हँसमुख चेहरे से; ययौ—प्रस्थान किया; हरिः—भगवान् ने।

राजधानी हस्तिनापुर की स्त्रियाँ अभी उनका अभिनन्दन कर ही रही थीं और इस प्रकार से बातें चला रही थीं कि भगवान् ने मुस्कराते हुए उनकी बधाइयाँ स्वीकार कीं और उन पर अपनी कृपादृष्टि डालते हुए नगर से प्रस्थान किया।

अजातशत्रुः पृतनां गोपीथाय मधुद्विषः ।  
परेभ्यः शङ्कितः स्नेहात्प्रायुङ्क्त चतुरङ्गिणीम् ॥ ३२ ॥

### शब्दार्थ

अजात-शत्रुः—जिसका कोई शत्रु न था, महाराज युधिष्ठिर; पृतनाम्—सुरक्षा सेनाएँ; गोपीथाय—रक्षा प्रदान करने के लिए; मधु-द्विषः—मधु के शत्रु ( श्रीकृष्ण ) का; परेभ्यः—अन्यों ( शत्रुओं ) से; शङ्कितः—भयभीत; स्नेहात्—स्नेह-वश; प्रायुङ्क्त—संलग्न; चतुः-अङ्गिणीम्—चतुरंगिनी सेना।

यद्यपि महाराज युधिष्ठिर का कोई शत्रु न था, तो भी उन्होंने असुरों के शत्रु, भगवान् श्रीकृष्ण के साथ जाने के लिए चतुरंगिणी सेना ( घोड़ा, हाथी, रथ तथा पैदल सेना ) लगा दी। शत्रु से बचाव और भगवान् से स्नेह के कारण महाराज ने ऐसा किया।

**तात्पर्य** : घोड़े, हाथी, रथ तथा मनुष्य—ये प्राकृतिक रक्षासाधन हैं। घोड़ों तथा हाथियों को पर्वतों या जंगलों तथा मैदानों में कहीं भी जाने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। रथ पर सवार योद्धा शक्तिशाली तारों के बल पर अनेक घोड़ो तथा हाथियों से लड़ सकते थे, जो कि आधुनिक आणिक अस्त्र के समान है। महाराज युधिष्ठिर अच्छी तरह जानते थे कि कृष्ण सबों के मित्र तथा शुभचिन्तक हैं, फिर भी ऐसे अनेक असुर भी थे, जो स्वभाववश भगवान् से ईर्ष्या रखते थे। अतएव कोई उन पर आक्रमण न कर दे, तथा स्नेहवश भी, उन्होंने भगवान् कृष्ण के अंगरक्षकों के रूप में चतुरंगिणी सेना लगा दी। आवश्यकता पड़ने पर, श्रीकृष्ण उन लोगों के आक्रमण से अपनी रक्षा कर सकते थे, जो उन्हें अपना शत्रु मानते थे फिर भी उन्होंने महाराज युधिष्ठिर द्वारा किया गया यह प्रबन्ध स्वीकार कर लिया, क्योंकि वे अपने बड़े भाई तथा राजा की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकते थे। भगवान् अपनी दिव्य लीला में आश्रित का सा खेल खेलते हैं और इस तरह कभी-कभी वे अपनी तथाकथित असहाय बाल्यावस्था में यशोदा माता की देख-रेख स्वीकार करते हैं। यह दिव्य लीला है। भगवान् तथा उनके भक्त के बीच जितना भी दिव्य आदान-प्रदान होता है, वह मूलतः दिव्य आनन्द प्राप्त करने के लिए होता है, जिसकी तुलना *ब्रह्मानन्द-स्तर* से भी नहीं की जा सकती।

अथ दूरागतान् शौरिः कौरवान् विरहातुरान् ।  
सन्निवर्त्य दृढं स्निग्धान् प्रायात्स्वनगरीं प्रियैः ॥ ३३ ॥

### शब्दार्थ

अथ—इस तरह; दूरागतान्—दूर तक उनके साथ-साथ जाकर; शौरिः—भगवान् कृष्ण; कौरवान्—पाण्डवों को; विरहातुरान्—विछोह भाव से अभिभूत; सन्निवर्त्य—विनम्रतापूर्वक आग्रह किया; दृढम्—कृतसंकल्प; स्निग्धान्—स्नेह से पूरित; प्रायात्—आगे बढ़े; स्व-नगरीम्—अपने नगर ( द्वारका ) की ओर; प्रियैः—प्रिय संगियों के साथ।

भगवान् कृष्ण के प्रति प्रगाढ़ स्नेहवश कुरुवंशी पाण्डव उन्हें विदा करने के लिए उनके साथ काफी दूर तक गये। वे भावी विछोह के विचार से अभिभूत थे। किन्तु भगवान् ने उनसे घर लौट जाने का आग्रह किया और स्वयं अपने प्रिय संगियों के साथ द्वारका की ओर रवाना हुए।

कुरुजाङ्गलपाञ्चालान् शूरसेनान् सयामुनान् ।  
 ब्रह्मावर्तं कुरुक्षेत्रं मत्स्यान् सारस्वतानथ ॥ ३४ ॥  
 मरुधन्वमतिक्रम्य सौवीराभीरयोः परान् ।  
 आनर्तान् भार्गवोपागाच्छ्रान्तवाहो मनाग्विभुः ॥ ३५ ॥

### शब्दार्थ

कुरु-जाङ्गल—दिल्ली प्रान्त; पाञ्चालान्—पंजाब प्रान्त का भाग; शूरसेनान्—उत्तर प्रदेश का भाग; स—सहित;  
 यामुनान्—यमुना के तटवर्ती जिलों को; ब्रह्मावर्तम्—उत्तरी उत्तर प्रदेश का भाग; कुरुक्षेत्रम्—वह स्थान जहाँ युद्ध लड़ा  
 गया; मत्स्यान्—मत्स्या प्रान्त; सारस्वतान्—पंजाब का एक हिस्सा; अथ—इत्यादि; मरु—मरुस्थल, राजस्थान;  
 धन्वम्—मध्य प्रदेश, जहाँ जल का अभाव है; अति-क्रम्य—निकल कर; सौवीर—सौराष्ट्र; आभीरयोः—गुजरात का  
 हिस्सा; परान्—पश्चिमी दिशा; आनर्तान्—द्वारका प्रान्त; भार्गव—हे शौनक; उपागात्—थक गये; श्रान्त—थकान;  
 वाहः—घोड़े; मनाक् विभुः—लम्बी यात्रा के कारण थोड़ा-सा ।

हे शौनक, तब भगवान् कुरुजांगल, पाञ्चाल, शूरसेन, यमुना के तटवर्ती प्रदेश,  
 ब्रह्मावर्त, कुरुक्षेत्र, मत्स्या, सारस्वता, मरुप्रान्त तथा जल के अभाव वाले भाग से होते हुए  
 आगे बढ़े। इन प्रान्तों को पार करने के बाद वे सौवीर तथा आभीर प्रान्त पहुँचे और अन्त में  
 इन सबके पश्चिम की ओर स्थित द्वारका पहुँचे।

तात्पर्य : भगवान् जिन-जिन प्रान्तों से होकर गये, वे उस समय भिन्न नाम से जाने जाते थे,  
 लेकिन जो दिशा दी गई है उससे यह सूचित होता है कि वे दिल्ली, पंजाब, राजस्थान, मध्यप्रदेश,  
 सौराष्ट्र तथा गुजरात से होकर यात्रा करते हुए, अन्त में अपने निवास-स्थान द्वारका पहुँचे। हमें उन  
 दिनों से आज तक इन प्रान्तों के समानार्थी प्रान्तों के नाम ढूँढने से कोई लाभ मिलने वाला नहीं,  
 लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि पाँच हजार वर्ष पूर्व भी, राजस्थान का मरुस्थल तथा मध्यप्रदेश  
 जैसे जल के अभाव वाले प्रान्त विद्यमान थे। मृदा-विशेषज्ञों का यह सिद्धान्त कि मरुस्थल हाल  
 ही में विकसित हुए, भागवत के कथन से पुष्ट नहीं होता। हम इस विषय को भू-गर्भ विज्ञानियों  
 द्वारा खोजे जाने के लिए छोड़े देते हैं, क्योंकि परिवर्तनशील ब्रह्माण्ड में भूगर्भीय विकास की  
 विभिन्न अवस्थाएँ होती हैं। हमें प्रसन्नता है कि भगवान् अब कुरु-प्रान्त से अपने निजी प्रान्त  
 द्वारकाधाम में पहुँच गये हैं। कुरुक्षेत्र वैदिककाल से विद्यमान है, अतः जब व्याख्याकार कुरुक्षेत्र  
 के अस्तित्व को नकारते हैं, तो यह उनकी निरी मूर्खता प्रतीत होती है।

तत्र तत्र ह तत्रत्यैर्हरिः प्रत्युद्यतार्हणः ।

सायं भेजे दिशं पश्चाद्गविष्ठो गां गतस्तदा ॥ ३६ ॥

### शब्दार्थ

तत्र तत्र—विभिन्न स्थानों में; ह—ऐसी घटना घटी; तत्रत्यैः—स्थानीय निवासियों द्वारा; हरिः—भगवान्; प्रत्युद्यत-  
अर्हणः—भेंटें तथा पूजा-सम्मान अर्पित किया जाकर; सायम्—शाम; भेजे—आने पर; दिशम्—दिशा; पश्चात्—  
पश्चिमी; गविष्ठः—आकाश में सूर्य; गाम्—समुद्र को; गतः—चला गया; तदा—उस समय ।

इन प्रान्तों से होकर यात्रा करते समय उनका स्वागत किया गया, पूजा की गई और उन्हें विविध भेंटें प्रदान की गईं। संध्या समय सारे स्थानों में संध्या-कालीन अनुष्ठान ( कृत्य ) करने के लिए भगवान् अपनी यात्रा स्थगित करते। सूर्यास्त के बाद नियमित रूप से ऐसा किया जाता ।

**तात्पर्य :** यहाँ यह बतलाया है कि जब भगवान् यात्रा पर थे, तो वे नियमित रूप से धार्मिक नियमों का पालन करते रहे। ऐसे कतिपय दार्शनिक अनुमान हैं कि भगवान् भी सकाम कर्मों को करने के लिए बाध्य हैं। लेकिन वास्तव में बात ऐसी नहीं है। वे किसी अच्छे या बुरे कर्म पर आश्रित नहीं हैं। चूँकि भगवान् परम पूर्ण हैं, अतएव वे जो भी करते हैं, वह सबों के कल्याण के लिए होता है। किन्तु जब वे पृथ्वी पर अवतरित होते हैं, तो वे भक्तों की रक्षा के लिए तथा अपवित्र अभक्तों के विनाश के लिए कर्म करते हैं। यद्यपि उनके लिए कुछ भी करना अनिवार्य नहीं, किन्तु वे सब कुछ करते हैं, जिससे अन्य लोग उनका अनुगमन कर सकें। वास्तविक उपदेश की विधि यही है; मनुष्य को चाहिए कि स्वयं उचित कर्म करे और अन्यो को भी यही शिक्षा दे, अन्यथा उसका अन्धानुगमन कोई नहीं करेगा। वे स्वयं कर्मफलों के दाता हैं। वे आत्माराम हैं, फिर भी वे हमें शिक्षा देने के लिए शास्त्रों के अनुसार कर्म करते हैं। यदि वे ऐसा न करें, तो सामान्य लोग कुमार्ग पर चले जाँय। लेकिन आगे चलकर, जब मनुष्य भगवान् की दिव्य प्रकृति को समझ पाता है, तो वह उनका अनुकरण नहीं करता। यह सम्भव नहीं है।

मानव समाज में भगवान् वही करते हैं, जो सबका कर्तव्य होता है, लेकिन कभी-कभी वे ऐसा महान् कर्म करते हैं, जो जीव द्वारा अनुकरणीय नहीं होता। यहाँ पर लिखे अनुसार, उनके



संध्यावन्दन-कार्य का पालन हर जीव को करना चाहिए, लेकिन उनके द्वारा गोवर्धन का उठाया जाना या गोपियों के साथ उनके रास का अनुकरण करना सम्भव नहीं। कोई सूर्य का अनुकरण नहीं कर सकता, क्योंकि वह गन्दे स्थान के भी जल का शोषण कर लेता है; सर्वशक्तिमान ऐसा कुछ भी कर सकता है, जो सबों के लिए कल्याणप्रद हो, लेकिन यदि हम उनका अनुकरण करने लगे, तो हम अनन्त कठिनाइयों में पड़ जाएँगे। अतएव सारे कर्मों में एक अनुभवी मार्गदर्शक की, अर्थात् गुरु की राय लेनी चाहिए, जो भगवत्कृपा के प्रत्यक्ष रूप हैं। इस तरह निश्चित रूप से प्रगति हो सकेगी।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कंध के अन्तर्गत “द्वारका के लिए भगवान् कृष्ण का प्रस्थान” नामक दशवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।